पश्चिमी हिमालय के संकटापन्न, औषधीय एवं सुगंधित पादपों की उपज तथा उनकी संवर्धन कार्यविधियां

अमित कुमार
सत्याकुमार सम्बंदम
गुरिंदरजीत सिंह गोराया
अतुल कुमार गुप्ता
भूपेंद्र सिंह अधिकारी
गोपाल सिंह रावत

पश्चिमी हिमालय के संकटापन्न, औषधीय एवं सुगंधिति पादपों की उपज तथा उनकी संवर्धन कार्यविधियां

अमित कुमार
सत्याकुमार सम्बंदम
गुरिंदरजीत सिंह गोराया
अतुल कुमार गुप्ता
भूपेंद्र सिंह अधिकारी
गोपाल सिंह रावत

gef
UNDP
भारतीय वन्यजीव संस्थान
Wildlife Institute of India
Himachal Pradesh Forest Department

2021

@ भारतीय वन्यजीव संस्थान

प्रशस्ति
कुमार ए, सत्यकुमार एस, गोराया जी एस, गुप्ता ए के, अधिकारी बी एस तथा रावत जी एस (2021)। पश्चिमी हिमालय के संकटापन्न औषधीय एवं सुरभित पादपों की उपज एवं संवर्धन कार्यविधियां। हिमाचल प्रदेश वन विभाग तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम को प्रस्तुत। 64 पृ.

ISBN: 81-85496-64-1

फ्रंट कवर
ऊपर : *फ्रीटीलेरिया साईरोसा, सइनोपॉडीफाइलम हेक्सेंड्रम, पिक्रोरिजा कुरूआ, एकोनीटम हेट्राफाईलोइड्स तथा एकोनीटम हेट्रोफाइल्म*

नीचे : *फ्रीटीलेरिया साइरोसा, पिक्रोरिजा कुरूआ, साइनोपॉडोफाइलम हेक्सेंड्रम, एकोनीटम हेट्रोफाइलम तथा ब्यूनियम पर्सीकम*

बैक कवर
सीचू तुआन नाला वन्यजीव अभ्यारण, चम्बा

इस प्रकाशन को, जीईएफ–जीओआई–यूएनडीपी सिक्योर हिमालय परियोजना के अंतर्गत ''लाहौल एवं पांगी भू–दृश्य, हिमाचल प्रदेश में औषधीय एवं सुरभित पादप प्रजातियों के संग्रह, उपयोग, मांग, बाजार, मूल्य प्रवृत्तियों और जीवन चक्र'' के आकलन पर भारतीय वन्यजीव संस्थान, देहरादून द्वारा निर्देशानुसार विकसित किया गया है।

मुख्य शब्द
सुरभित पादप, औषध, जड़ी व्यापार, संकटापन्न औषधीय पादप, पश्चिमी हिमालय

डिस्क्लेमर
इस प्रकाशन में विहित भौगोलिक अस्तिव तथा सामग्री के प्रस्तुतीकरण द्वारा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) या भारत सरकार द्वारा किसी देश, भू–भाग या क्षेत्र या प्राधिकारी या सीमा संरूपण के संबंध में किसी प्रकार की राय नहीं दी गई है। यह आवश्यक नहीं है कि इस प्रकाशन में व्यक्त किये गये विचार यूएनडीपी या यूएन सदस्य राज्यों सहित संयुक्त राष्ट्रों के विचारों को परिलक्षित करते हों या व्यावसायिक नामों या वाणिज्यिक प्रक्रियाओं के गठन का अनुमोदन करते हों। इस प्रकाशान के विषयों का विश्लेषण करते समय यूएनडीपी को महज एक स्रोत के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

अभिकल्प – विन्यास
श्री वीरेन्द्र शर्मा

मुद्रक
साई स्पर्श, देहरादून

प्राक्कथन

भारतीय हिमालयी क्षेत्र में भारत की कुल पुष्पित पादप प्रजातियों की करीब 50% आबादी है जिनमें से करीब 30% आबादी देशज पादपों की है। इस क्षेत्र में कई औषधीय तथा सुरभित पादप प्रजातियां मौजूद है जो मुख्यतः वनों और ऊँचाई वाले भागों में पाई जाती हैं। इस क्षेत्र में अनादिकाल से ही पादपों का प्राकृतिक, पारितंत्रीय तथा सांस्कृतिक मूल्यों का प्रतिपादन किया गया है और क्षेत्र में औषधीय पादपों का संग्रह तथा उपयोग किया जाता रहा है।

हिमाचल प्रदेश इन औषधीय तथा सुरभित पादपों का भण्डार है। इन पादपों का परम्परागत रूप से उपयोग किया जाता है और इनके बारे में परम्परागत ज्ञान उपलब्ध है। इस राज्य में सीए 548 प्रजातियां रिकार्ड की गई हैं और प्राचीन काल से ही इन पादपों के संसाधनों की खपत की जाती रही है। बढ़ती हुई वाणिज्यिक मांग, अनियोजित तथा अतिदोहन के कारण कई औषधीय पादप प्रजातियों की वनीय आबादी का ह्रास हो रहा है। वर्तमान परिदृश्य में अनियोजित फस्लीकरण पद्धातियों, अवैध व्यापार, अतिदोहन तथा अतिचराई से उच्च मूल्य की इन औषधीय पादपों के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है और इनकी प्राकृतिक आबादी, पुनरूत्पादन तथा जीवनक्षमता का ह्रास हो रहा है।

इस पुस्तक में ''पश्चिमी हिमालय के संकटापन्न औषधीय तथा सुरभित पादपों का सतत् उत्पादन तथा कृषि कार्यविधि'' पर कुछ मुख्य प्रजातियों की खेती तकनीकों और फसलीकरण का वर्णन किया गया है जैसे *एकोनीटम हेट्रोफाईलम, एकोनीटम हेट्रोफाईलोईडस, ब्यूनियम पर्सीकम, डक्टेलोरिजा हेटाजेरिया, फ्रीटालेरिया साइरोसा, पिक्रोरिजा कुरूआ, पॉलीगोनेटम वर्टीसाइलेटम, र्‌यूम आस्ट्रेल, र्‌यूम ब्यूनियम* तथा *साइनोपोडोफाईलम हेक्सेंड्रम*। इसमें 'क्या एकत्र करना है', 'किस स्थिति में', 'कब', 'कैसे' तथा 'कितना' आदि के संदर्भ में दीर्घकालिक संरक्षण के उपाय बताये गये हैं। इस पुस्तक में मुख्य प्रजातियों की आकृतिविज्ञान, ऋतुविज्ञान, आबादी स्थिति, संरक्षण स्थिति, संभावित खतरों, औषधीय उपयोजन, बाजार और व्यापार, उत्तम फस्लीकरण तथा संग्रह पद्धतियों में सुधार के उपायों, खेती तथा प्रसार पद्धतियों के बारे में बताया गया है।

इसके परिणामस्वरूप, सिक्योर हिमालयी परियोजना का शुभारंभ किया गया है जो लेखकों द्वारा पश्चिमी हिमालय की संकटापन्न प्रजातियों के संरक्षण हेतु सार्थक प्रयास है। मैं सभी लेखकों की सफलता और उज्जवल भविष्य की कामना करता हूं।

डॉ0 धनन्जय मोहन
निदेशक
भारतीय वन्यजीव संस्थान
देहरादून

आभार

यदि परियोजना की विभिन्न स्थितियों में कुछ महानुभावों की सहायता और मार्गदर्शन प्राप्त नहीं होता तो इस अनुसंधान को पूर्ण करना असंभव था। परियोजना के दौरान भावसं की टीम को विशेषज्ञों और अनुभवी व्यक्तियों से काफी कुछ सीखने का सुअवसर मिला जिससे हम कार्य को सुचारू रूप से सम्पन्न करने में सफल हुये।

हम पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, नई दिल्ली तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के आभारी है जिन्होंने हमें यह कार्य करने का सुअवसर प्रदान किया। साथ ही हम वैश्विक पर्यावरणीय सुविधा (जीईएफ) के आभारी हैं जिन्होंने इस परियोजना के लिए सहायता दी और धन मुहैया कराया।

हम इस अवसर पर हिमाचल प्रदेश वन विभाग, हिमाचल सरकार के आभारी हैं जिन्होंने इस कार्य के निष्पादन में हमारा सहायोग किया। परियोजना को इस भू–दृश्य में सुचारू रूप से निष्पादित करने हेतु डा0 सवीता, प्रधान मुख्य वन संरक्षक एवं वन शक्ति प्रमुख तथा सुश्री अर्चना शर्मा, प्रधान मुख्य वन संरक्षक एवं प्रमुख वन्यजीव प्रतिपालक का आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने इस भू–दृश्य में परियोजना क्रिया–कलापों के सफल सम्पादन में आवश्यक कार्यक्षेत्रीय मार्गदर्शन एवं सहयोग प्रदान किया। पूरे अध्ययन के दौरान सहयोग करने के लिए लाहौल और पांगी के प्रभागीय वन अधिकारियों, वन रेंज अधिकारियों, उप रेंज आधिकारियों तथा वन रक्षकों का आभार व्यक्त करते हैं।

परियोजना के दौरान आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराने और सांस्थानिक सहायता मुहैया कराने के लिए डा0 धनन्जय मोहन, निदेशक, भारतीय वन्यजीव संस्थान तथा डा0 वी बी माथुर, पूर्व निदेशक, भारतीय वन्यजीव संस्थान, देहरादून के प्रति आभार प्रकट करते हैं। परियोजना के सफल निष्पादन में लगातार सहायता और मार्गदर्शन करने हेतु डा0 वाई वी झाला, डीन, भारतीय वन्यजीव संस्थान तथा डा0 जी एस रावत, पूर्व निदेशक एवं डीन, भारतीय वन्यजीव संस्थान का धन्यवाद करते हैं। परियोजना के दौरान व्यापक सहयोग और सलाह देने के लिए हम डा0 सल्वाडोर लिंगदोह, वैज्ञानिक 'डी' तथा डा0 गौतम तालुकदार, वैज्ञानिक 'ई', भारतीय वन्यजीव संस्थान, देहरादून को धन्यवाद देते हैं। हम शोधकर्त्ताओं डा0 रूपाली शर्मा, मोनिका शर्मा, मनीषा मथेला और हिमांशु बरगली को फील्ड डाटा और इस पुस्तक की तैंयारी में सहयोग के लिये धन्यवाद देते हैं।

टीम में नया जोश और उत्साह भरने के लिए सिक्योर हिमालय की टीम के सदस्यों तथा अन्य घटकों को धन्यवाद देते हैं और आभार प्रकट करते हैं। अपने अनुभवों तथा ज्ञान को साझा करने के लिए हम लाहौल तथा पांगी भू–दृश्य के देशज समुदायों तथा समस्त हितधारकों के ऋणी रहेंगे। स्थानीय लोगों ने कार्यक्षेत्रीय कार्य पूर्ण करने में जो सहयोग और सत्कार किया उसे हम कभी नहीं भूल पायेंगे।

- लेखक

पृष्ठभूमि तथा मूलाधार

पश्चिमी हिमालय में स्थित हिमाचल प्रदेश (30^0 एन तथा 75^0 से 79^0 पूर्व) समृद्ध जीवविज्ञानीय वैविध्य के लिए जाना जाता है। 73,300 विभिन्न पादप प्रजातियों से परिपूर्ण इस प्रदेश का क्षेत्रफल 55,673 कि0मी0^2 है। व्यापक वानस्पतिक अध्ययनों के आधार पर कई कार्यकर्ताओं ने हिमाचल प्रदेश की प्रजाति समृद्धि को प्रलेखीकृत किया है। उदाहरण के लिए एक व्यापक वानस्पतिक सर्वेक्षण में चौधरी और बाघवा (1984) ने हिमाचल प्रदेश की 3200 पुष्पित पादपों की व्यापक सूची तीन खंडों में प्रकाशित की है। असवाल और मेहरोत्रा (1994) ने लाहौल और स्पीती की 353 कुलों की 985 प्रजातियों का विस्तृत वर्णन किया है जिसमें राज्य के समशीत रेगिस्तान का प्रतिनिधित्व है। सिंह और रावत (1999) ने महान भारतीय राष्ट्रीय पार्क से 128 कुलों के अन्तर्गत 427 वंशों से संबद्ध वास्क्यूलर पादपों को प्रलेखीकृत किया है। सेखर तथा श्रीवास्तव (2009) ने पिन घाटी की 513 प्रजातियों को सूचीबद्ध किया है। चावला आदि (2012) ने वास्क्यूलर पादपों की 911 प्रजातियों को रिपोर्ट किया है जो आवृत्तबीजी तथा अनावृत्तबीजी 881 प्रजातियों से संबद्ध है और 102 कुलों तथा 433 वंशों में वितरित हैं। इनमें किन्नौर से प्टेरीडो फाईटस की 30 प्रजातियां भी शामिल हैं।

रावत (2007) के अनुसार पश्चिमी हिमालय में लाहौल और स्पीती के तुंगीय क्षेत्र, वनीय औषधीय तथा सुरभित पादपों के मुख्य स्थल हैं। विडम्बना है कि लाहौल, पांगी, स्पीती किन्नौर की दुर्गम घाटियां हिमाचल प्रदेश के शीतशुष्क क्षेत्रों में हैं जिनके वानस्पतिक तथा एमएपी के बारे मे अपेक्षाकृत कम अध्ययन हो सका है। इसके अलावा एमएपी के वर्तमान व्यापार स्तर में सूचनायें, पश्चिमी हिमालय की कुछ अवस्थितियों से ही प्राप्त हो पाती हैं रावत (2007)। अन्य क्षेत्रों की तरह ये क्षेत्र भी वन संसाधनों के अतिदोहन के दबाव को झेल रहे हैं, जिसमें वनों से एमएपी का अवैज्ञानिक और परिपक्वता पूर्व दोहन शामिल है जो अवैधर और गुप्त बाजार की तरह है और वन संसाधनों पर अत्यन्त दबाव डालता है जिससे स्थानीय आबादी और समुदायों की आजीविका पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जड़ीय उत्पादों की बढ़ती हुई मांग के कारण इन क्षेत्रों की मुख्य एमएपी तथा वनीय आबादी विलुप्त होने की कगार पर है। उपरोक्त वार्णित पहलुओं को ध्यान में रखते हुये कुमार आदि (2021) ने हिमाचल प्रदेश के लाहौल तथा पांगी भू–दृश्य की चयनित औषधीय एवं सुरभित प्रजातियों का अध्ययन करने का निश्चय किया है जिसमें 80 सतत उपज और संवर्धन के लिए (i) एमएपी की उपयोजन पद्धति की पहचान करना तथा (ii) परियोजना उद्देश्यों के अनुरूप वर्तमान मूल्य श्रृंखला का अध्ययन करना शामिल है। परियोजना के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अध्ययन में 12 मुख्य कार्य शामिल किये गये। **(तालिका 1)**

तालिका 1 : अध्ययन के लिए प्रस्तावित मुख्य कार्य

क्र0सं0	मुख्य कार्य
1.	एमएपी प्रजातियों का मानव–वानस्पतिक प्रलेखीकरण
2.	भू–दृश्य में आर्थिक उपयोजन के अनुसार एमएपी को चिहिन्त एवं सूचीबद्ध करना
3.	पांच एमएपी को दो श्रेणियों में चयनित करना
4.	भू–दृश्य में उपरोक्त आधार पर चिहिन्त इस प्रजातियों के वितरण, प्रचुरता और संरक्षण का आकलन करना।
5.	दस सूचीबद्ध प्रजातियों की मूल्य श्रृंखला का अध्ययन करना
6.	संबंधित समुदायों की आजीविका पर दस प्रजातियों की भूमिका को समझना तथा वर्तमान विधिक संरचना के अनुसार इनके व्यापार को सुनिश्चित करना
7.	परियोजना भू–दृश्य में पहुंच तथा लाभ में हिस्सेदारी मॉडल तैयार करना और उसका प्रदर्शन करना।
8.	सतत् संवर्धन तथा एकत्रण कार्यविधि को अभिकल्पित करना
9.	उच्च संरक्षण मूल्यों के क्षेत्रों का निर्धारण करना
10.	संबंधित भू–दृश्य में संवर्धन उपायों और तकनीकों का निर्धारण करना
11.	लाभ में हिस्सेदारी तथा पहुंच (एबीएस)
12.	हितधारकों के साथ परामर्शी सरंक्षण कार्यशालायें आयोजित करना

परिणामस्वरूप 'पश्चिमी हिमालय की संकटापन्न औषधीय तथा सुरभित पादपों के संवर्धन और निरन्तर उत्पाद की कार्यविधि' पर यह प्रकाशन सम्पन्न किया गया जिसमें मुख्य रूप से 8 और 10 पर दिये गये बिन्दुओं के अनुसार, *अकोनीटम हेटराफाईलम, एकोनीटम हेट्राफाईलोईड्स, ब्यूनियम पर्सीकम, डेक्ट्राइलोरिजा हेटागोरिया, फ्रीटीलेरिया साइरोसा, पिक्रोरिजा कुरूआ, पॉलीगोनटम बर्टीकेलेटम, रयूम आस्ट्रेल, र्यूम वेबियानम तथा साइनोयाडीफलम हेक्जाड्रम* के विशेष संदर्भ में संवर्धन तकनीकों का वर्णन किया गया है। इसमें चयनित एमएपी के उन्नत विकास और प्रसारण पद्धतियों यथा : संवर्धन की निरंतरता और मुख्य तत्वों सहित संग्रह संरचना पर व्यापक सूचनायें दी गई है, जिनमें चयनित एमएपी पर ''क्याा संग्रह करना है, किस स्थिति में संग्रह करना है, संग्रह कब करना है, कितना और कैसे संग्रह करना है, प्रजाति और अवस्थिति की कार्यप्रणाली, वासस्थल और वितरण, रूपविज्ञान और ऋतुजैविकी, आबादी स्थिति, संरक्षण स्थिति, मुख्य खतरे, औषधीय उपयोजन, बाजार एवं व्यापार, उत्तम संवर्धन तथा संग्रह पद्धातियां, संरक्षण के विशेष उपाय तथाा प्रयास पद्धतियां'' का व्यापक रूप से अध्ययन किया गया है और महत्वपूर्ण संदर्भो का उपयोग करते हुये प्रोटोकॉल विकसित किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र

लाहौल और पांगी भू–दृश्य, हिमाचल प्रदेश में धौलाधार–पीर पांजाल तथा जंकसर की परिधियों के बीच में पड़ता है। यह क्षेत्र चन्द्रभागा (चेन्नाव) के ऊपरी जलवाह क्षेत्र में आता है जो महान और पराहिमालयी क्षेत्र के बीच संक्रमण स्थल का निर्माण करता है। यह भू–दृश्य उत्तर में जम्मू–कश्मीर के डोडा और जंस्कर क्षेत्र से सटा हुआ है और करीब 8000 कि0मी0^2 भू–भाग में फैला हुआ है। यह भू–दृश्य प्रायः कठोर, पहाड़ी क्षेत्र है जिसमें सुदूर घाटियां यत्र–तत्र फैली हुई हैं। पांगी की न्यूनतम तुंगता सीमा सान्सारी नाले में 200 मीटर सीए है जो जंस्कर से जुड़ी पर्वत श्रृंखलाओं की ऊंची चोटियों में 6000 मीटर तक है। पांगी की सुन्दर घटियों में सुरालख हयूडन, साइच्यू तथा पारमर शामिल हैं जिनके रास्ते जंस्कर पर्वत श्रंखलाओं तक पहुंचा जा सकता है। जैव–भौगोलिक दृष्टि से पांगी भू–दृश्य ग्रेटर हिमालय तथा ट्रांस हिमालय के संक्रमण क्षेत्र में पड़ता है। पांगी दूरवर्ती उबड़–खाबड़ तथा कम विकसित जनजातीय क्षेत्र है। इसके दुर्गम होने का एक कारण उबड़–खाबड़ धरातल है जो चेनाब के कटाव के कारण गहरी खाइयों में तब्दील हो चुका है। चेनाब नदी आरंभ में पश्चिम तथा बाद में उत्तर–पश्चिम दिशा में बहती है। अधिकांश भू–भाग, पीर पांजाल के हल्के वर्षा क्षेत्र ($<$ 800 एमएम) में स्थित है जहां बर्फबारी अधिक होती है। लाहौल घाटी में चेनाब नदी की दो मुख्य सहायक नदियों यथा : चंद्रा और भागा मिलती हैं।

क्षेत्र में क्रिस्टलीय उच्च पहाड़ियां फैली हुई हैं जिनमें हरे–भरे चारागाह हैं, जो हिमाचल प्रदेश के निचले भागों के घुमंतू गद्दी चरवाहों के लिए अत्यंत उपयोगी हैं। पांगी, हिमाचल प्रदेश के उत्तर–पश्चिमी में पड़ता है जिसकी सीमा पर जम्मू–कश्मीर है। किन्नौर, उत्तराखंड और चीन की पूर्वी सीमा में है। पांगी की स्थिति 32^{0}11′30-33^{0}13′06″एन तथा 75^{0}45′ ~77^{0}03′33″ ई के बीच है। पांगी तहसील में 16 पंचायतें तथा 54 रिहायशी गांव है। पांगी तहसील का क्षेत्र 1601 कि0मी02 में फैला हुआ है। 2011 की जनगणाना के अनुसार जिसकी आबादी 18868 है। लाहौल 32^{0}61′92″ उत्तर तथा 77^{0}37′84″ पू0 में पड़ता है। यहां 132 गांव हैं जिनकी आबादी 2011 की जनगणाना के अनुसार करीब 10,199 है। भू–दृश्यों, अर्थात लाहौल और पांगी हिमाचल प्रदेश केंद्रीय अवस्थिति वनाच्छादान और गावों की दृष्टि से आकृति 1 तथा 2 में दिखाई गई है।

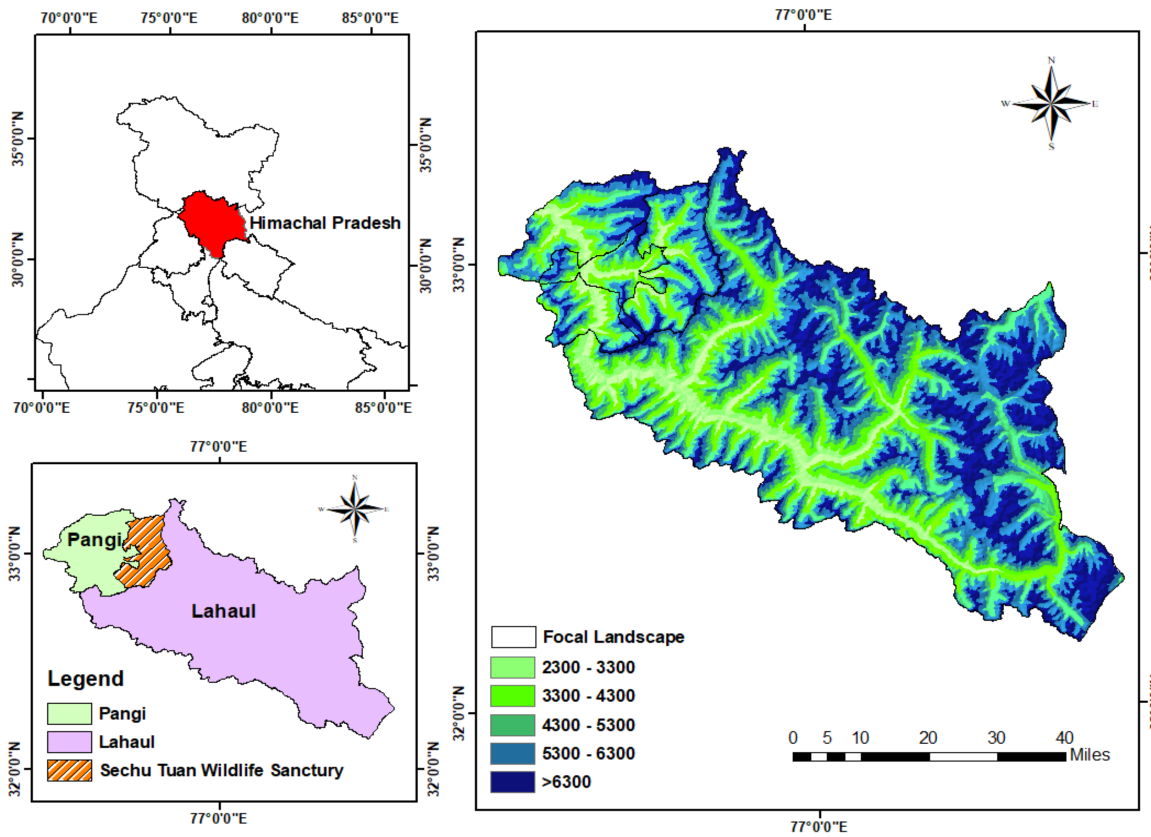

आकृति 1 : हिमाचल प्रदेश में लाहौल और पांगी भू–दृश्यों को दर्शाता हुआ मानचित्र

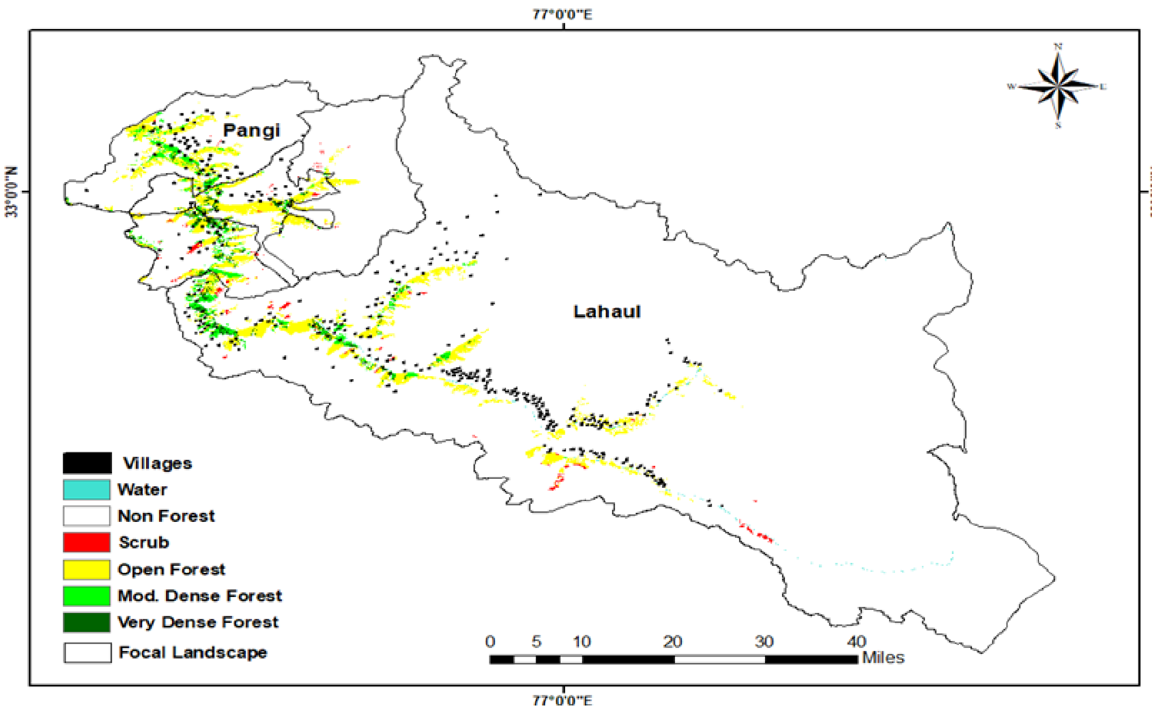

आकृति 2 : नाभिक भू–दृश्य में वनाच्छादन तथा गांवों को दर्शाता हुआ मानचित्र

पांगी घाटी (क) चसक भटोरी (सेच्यू घाटी) में तुंगीय चारागाह का शानदार दृश्य (ख) हुडान भटोरी में बेतुल्य वन तथा (ग) सुराल घाटी का शानदार दृश्य । 📷 अमित कुमार

लाहौल घाटी (क) चंद्रभागा नदी का मोहक दृश्य; (ख) मियार घाटी में हेमलेट (ग) हडसर के रास्ते में शंकुवृक्षीय वनों के बीच अधवारी । अमित कुमार

एकोनिटम हेट्रोफेलम

पिक्रोरिजा कुरूआ

सइनोपोंडोफेलम हेक्जाड्रम

उच्च संकट अवधारणा

डेक्टेलोरिजा हेटाजेरिया

र्यूम आस्ट्रेल

एमएपी प्रजातियों का चयन उच्च संकटापन्न अवधारणा के आधार पर किया गया है।

अमित कुमार तथा नवेंदु पागे

उच्च संग्रहण मात्रा के आधार पर एमएपी का चयन

📷 अमित कुमार, जी एस गोराया तथा गजेन्द्र एस रावत

सतत संवर्धन तथा उत्पादन कार्यविधि

संवर्धन उपायों तथा तकनीकों के विशेष संदर्भ में चयनित एमएपी

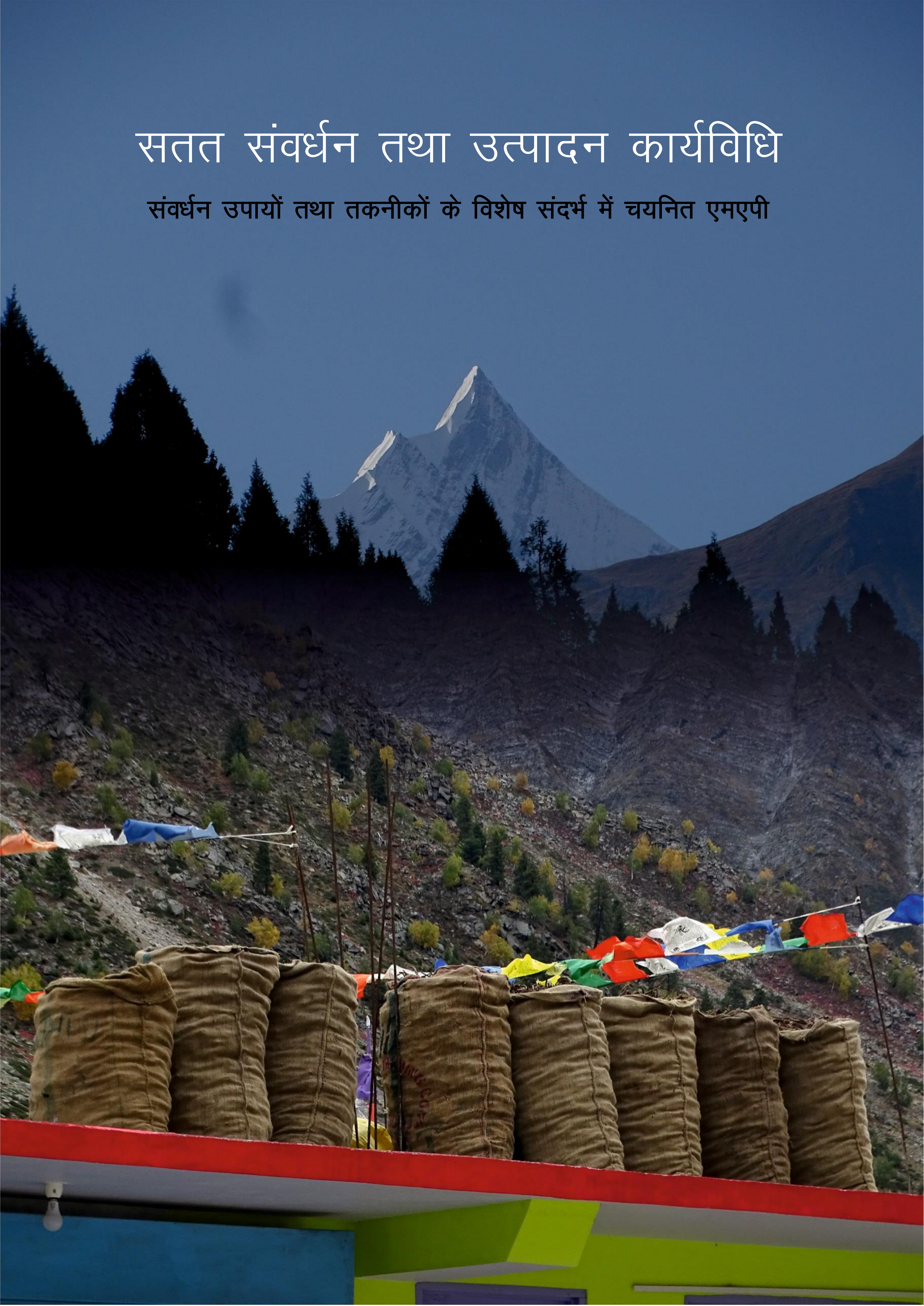

सतत् संवर्धन एवं उपज कार्य विधि

वासस्थल निम्नीकरण तथा अति दोहन के कारण हिमालयी क्षेत्र की कई औषधीय पादप प्रजातियों की वनीय आबादी का तेजी से ह्रास हुआ है। इनमें से कई प्रजातियां आईयूसीएन की लाल सूची में संकटापन्न के रूप में दर्ज की जा चुकी हैं। इसलिए इन वनीय प्रजातियों की आबादी को पुनःर्जीवित करने के लिए इनके विविध जीन पूल्स को संरक्षित करना और मनुष्य के उपयोग के लिए इनकी निरन्तर उपलब्धता बनाये रखना आवश्यक है। हिमाचल प्रदेश के लाहौल और पांगी भू–दृश्य की चयनित एमएपी के लिए द्वितीय स्रोत के रूप में आफलाईन तथा आनलाईन पर निरंतर संवर्धन और संग्रह कार्यविधि विकसित की गई है (तालिका –2) सतत् संवर्धन तथा संग्रह संरचना के मूल तत्व इस प्रकार हैं :–

एकत्र क्या करना है : पादप के अंगों या सामग्री को एकत्र करना है।

किस अवस्था में : विकास की उपयुक्ततम स्थिति में परिपक्व और स्वस्थ सामग्री का संग्रह करना।

कब : फसल के मौसम में, महीना और दिन के किस समय।

कैसे : विभिन्न अंगों के लिए विभिन्न एकत्रण तकनीकें, जिसके लिए परम्परागत तथा अकादमिक ज्ञान के आधार पर सर्वोत्तम पद्धति को अपनाना।

कितना : प्रजाति तथा आबादी घनत्व के अनुसार मात्रा निर्धारित करनी चाहिए सतत संवर्धन पद्धतियों को प्रजाति तथा अवस्थिति विशेष के अनुरूप होना चाहिए।

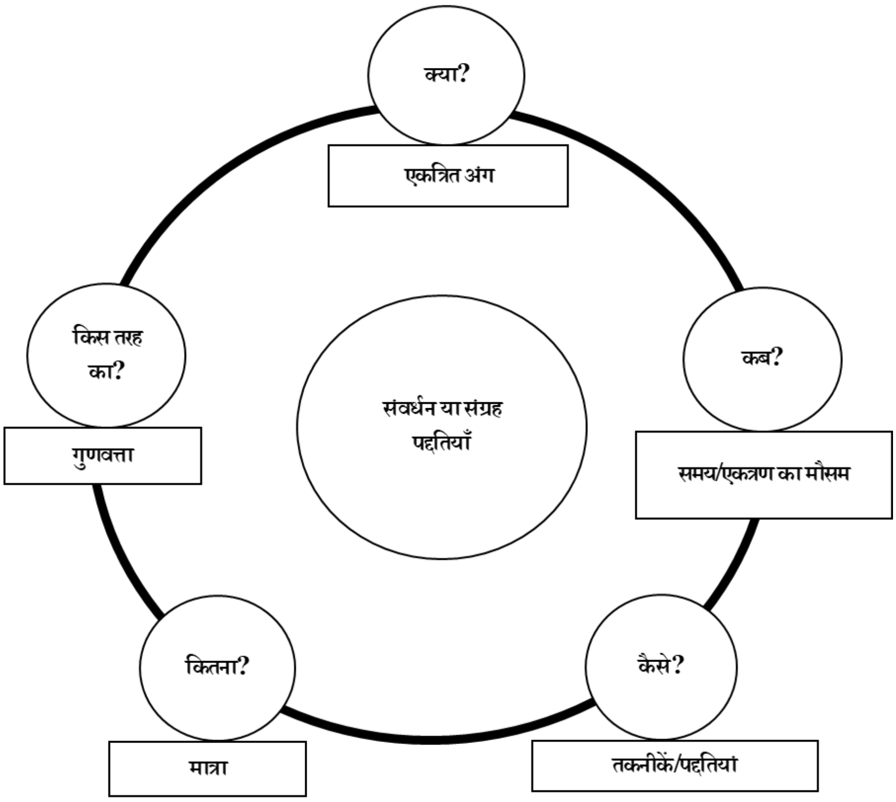

सतत् संवर्धन एवं संग्रह संरचना (दीपा आदि 2018) से लिया गया है

तालिका 2 : पश्चिमी हिमालय में चयनित एमएपी का वर्तमान संवर्धन तथा उपज कार्यविधि

प्रजाति	संदर्भ						
	चौहान (2001)	समन्त आदि (2008)	एनएमपीबी (2008)	एनएमपीबी (2016)	क्लसंगा (2016)	नौटियाल और नौटियाल (2004)	वेद तथा गोराया (2008)
एकोनीटम हेट्रोफाइलम	--	√	√	--	√	√	√
ब्यूनियम पर्सीकम	√	√	--	--	--	√	√
डेक्टालोरिजा हेटाजीरिया	--	√	--	√	√	√	√
फ्रीटीलेनिया साइरोसा	--	√	--	--	√	√	√
पिक्रोरिजा कुरूआ	--	√	√	--	√	√	√
पॉलीगोनेटस वर्टीसाइलेटम	--	√	--	--	--	--	√
साइनोपॉडेफाइलम हेक्सेंड्रम	√	√	--	√	√	√	√
*र्यूम प्रजा0**	--	√	√	--	√	√	√

*=*र्यूम आस्ट्रेल, आर वेब्बीआन तथा आर स्पाईसोफोर्मी*

एकोनीटम हेट्रोफाइलम वाल्ल. एक्स रायले

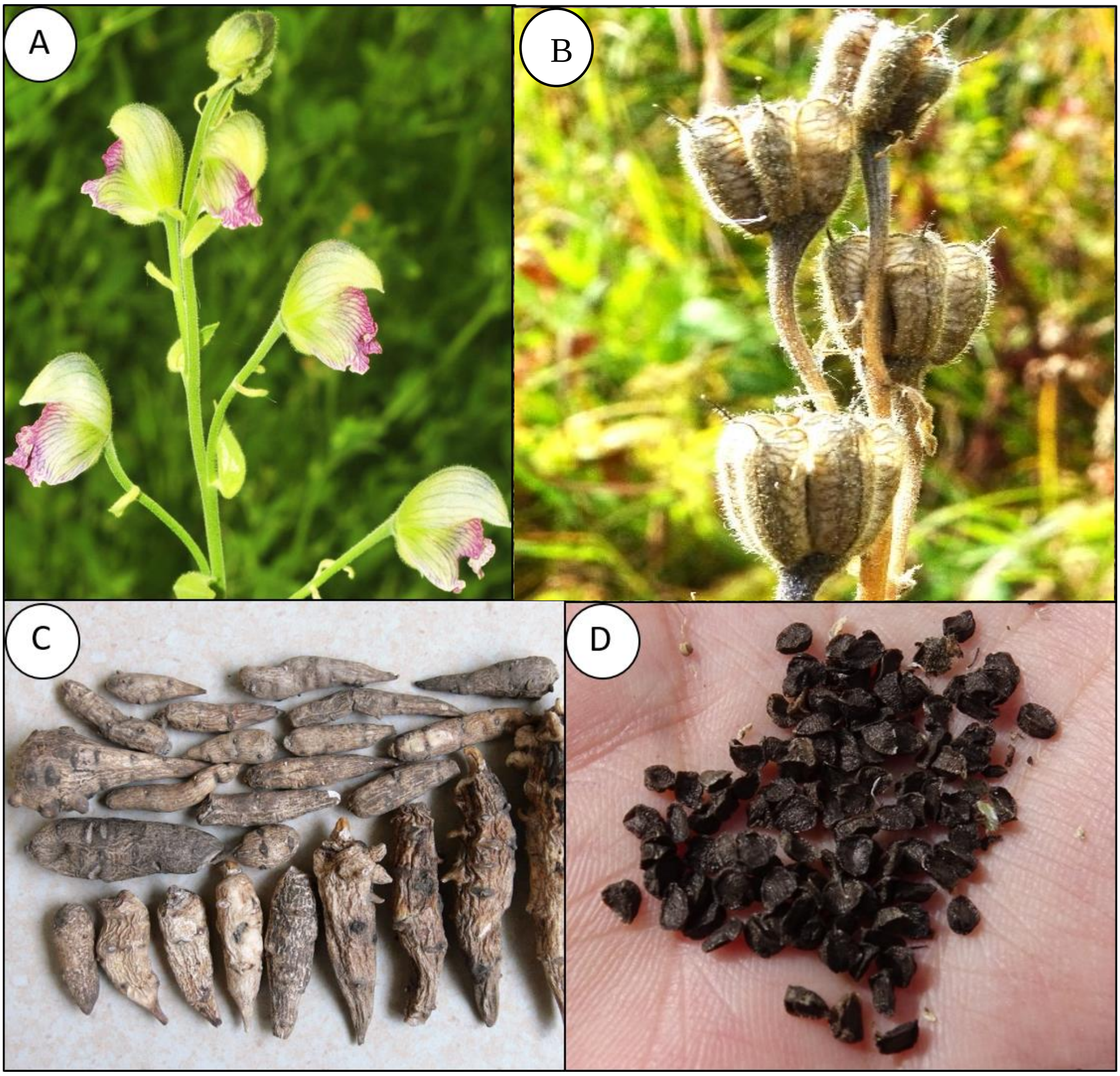

एकोनीटम हेट्राफाइलम, **ए**–पुष्प, **बी**–फोलीकल, **सी**–जड़, **डी**–बीज **ए:** नवेंदु पागे; **बी एवं डी** : अमित कुमार; **सी:** जीएस गोराया

प्रजाति तथा अवस्थिति प्रोफाईल

ब्युत्पति : एकोनीटम हेट्रोफाइलम रेननक्यूलेसिआई, बटरकप फेमली का सदस्य है। इसका जेनेरिक नाम – एकोनीटम, ग्रीक शब्द 'एकोन' से लिया गया है जिसका अर्थ बाण से है, संभवतः इसे बाण के अग्रभाग (नोक) में लगाया जाता था। इसका विशेष नाम हेट्रोफाइलम पत्तियों से संदर्भित है (विभिन्न आकार की आधारिक तथा स्तंभीय पत्तियां)

देशी नाम : कदवा पेटिस, अतीष तथा कोउर

व्यावसायिक नाम : अतीस, आतिस, अतिविशस और बोंगा

युनानी नाम : अतीष

जन सामान्य नाम : पतीस

आयुर्वेदिक नाम : अतिविशा

संस्कृत नाम : अमरीता, अरूना, अटैचा, अतिसारंगी, अलिवासा, भंगुरा, मिरिंजी, मादरी, धुनाबल्लभ, कश्मीरा, महोत्सवा, म्रीडवी, प्रतिवास, प्रवीसा, शिरिंजी, वीरा, वीरूपा, वीशा, विश्वा, शेविता तथा श्यामकांठा

वासस्थल तथा वितरण

वासस्थल : अतीष, उपतुंगीय से तुंगीय हिमालयी क्षेत्र में 2400 से 4500 एम, एएमएस तक फैला हुआ है (वेद आदि 2015)। यह सामान्यतः घास चारागाहों, बांज या शंकु वृक्षीय वनों के ऊपरी भागों, रोडेंड्रोन वनों, कारकस–अबीज वनों के सीमांत भगों, हिमानी कछारों, नम चट्टानी भागों, तुंगीय शुष्क झाड़ीनुमा वनों, खुले घास ढालानों, छायादार नम तुंगीय ढालानों तथा वन सीमाओं में पाया जाता है (समन्त आदि 2008; भट्ट आदि 2014)

वैश्विक वितरण : वैश्विक रूप से यह प्रजाति नेपाल, पाकिस्तान और भारत में पाई जाती है। भारत में यह हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, जम्मू–कश्मीर में पाई जाती है। (वेद आदि 2015)। हिमाचल प्रदेश में इसे सांग्ला, रोहतांग, छुरधार, मराल डांडा, गमगुल, सारू थाच, सांगली थाच, चन्सल थाच, कांगड़ा, मण्डी, कुल्लू, शिमला, चम्बा, लाहौल–स्पीति, पांगी, डलहौजी, मनाली, किन्नौर, राजगढ़, पार्वती घाटी में पाया जाता है (समन्त आदि 2008)। जम्मू–कश्मीर में इसे सैथल, स्काज तथा अनन्तनाग में कलोई, अकड पत्री नाला, डांग टंगमार्ग, कंडवा वन, गुलमर्ग, अहरबाल तथा डाकीगाम राष्ट्रीय पार्क के ऊपरी भाग में पाया जाता है (बीह आदि 2006)। उत्तराखंड में ए. हेट्रोफाइलम को खरसोला, डाडीटाल, सुकी, गांगी, गंगनानी, नवाली, हुरी, पिलांग, सौरगाड, पिण्डरपार, दयारा, रूद्रनाथ, कुआरीपास, क्र्यांकी, बेडानी, टेहरी, उत्तराखंड तथा रूद्रप्रयाग में रिकार्ड किया गया है (रावत आदि 2016)।

विश्व में एकोनीटम की करीब 400 प्रजातियों रिपोर्ट की गई हैं (सेलबम आदि 2015)। भारत में एकोनाईट्स की 27 प्रजातियां रिपोर्ट की गई हैं, जिनमें 12 और 16 प्रजातियां क्रमश : पश्चिमी हिमालय और पूर्वी हिमालय में वितरित हैं (अग्निहोत्री आदि 2015)। इनमे से 18 प्रजातियों में जहरीले या औषधीय गुण पाये जाते हैं (सेलबम आदि 2015)। आईएचआर में सिक्किम में अधिकतम 13 इसके बाद जम्मू–कश्मीर में 11, हिमाचल प्रदेश, अरूणाचल प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल में 10–10, उत्तराखंड में 7, मनीपुर में 2 और नागालैण्ड में 1, प्रजाति रिकार्ड की गई है (अग्निहोत्री आदि 2015)।

आकृति विज्ञान एवं ऋतुजैविक

वर्गिकीय विवरण : बारहमासी, दर्शनीय जड़ी, 1.2 मीटर तक लम्बी। तना लम्बा, सीधा या आधार से शाखायें, अरोमिल तथा ऊपरी छोर पर अल्परोमिल चौड़ी पत्तियां, बिषमरूपीय, आधारिक पत्तियां लम्बी, पर्णवृन्त, अण्डाकार, पांच पिण्डक तथा दंतीले, ऊपरी या पूरी त्रिशाख। बड़े पुष्प, 0.25 से0मी0 लम्बे,

हेलमेट के आकार के, चमकीले, नीले या हरे–नीले बैंगनी नसोंयुक्त, सीधे या कुछ–कुछ असीमाक्ष की तरह, कभी–कभी लघु पुष्पगुच्छ जिनमें कक्षवर्ती असीमाक्ष हों। निचले तथा ऊपरी सहपत्र पर्णिल, अण्डाकार या बल्लभ की नोक जैसा, किनारे पिण्डक, दीर्घ वृत्तीय, पूर्ण या कुठदंती। पांच रोमकूप बालों युक्त।

फलन तथा पुष्पन : वृद्धि के तीसरे वर्ष अगस्त से अक्टूबर के बीच तीखा नीला या हरे बैंगनी पुष्प

आबादी स्थिति

ए. हेट्रोफाइलम का भौगोलिक क्षेत्र सीमित है जिसमें उबड़खबाड़ भूमि तथा पारितंत्रीय समायोजन आवश्यक होता है। इसलिये यह प्रजाति नये क्षेत्रों में नहीं फैल पाती है और विकसित नहीं होती है। इसके साथ ही उत्तर–पूर्वी हिमालय में यह प्रजाति पूर्णतः स्थानीय हो गई है और इसकी आबादी कुछ निश्चित पारिपद्धतियों में यत्र–तत्र पाई जाती है (बीघ आदि 2006)। ए हेट्रोफाईलस की आबादी अवस्थिति और तुंगता पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए हिमाचल प्रदेश में इसका घनत्व 1–3.7 (एकल एम ^{2}) है (सिंह आदि 2008; उनियाल आदि 2006)। इसी प्रकार उत्तराखंड में इसका घनत्व 1–6.3 (एकल एम^{2}) है (नौटियाल आदि 2002; रावत आदि 2016)। इसके अलावा बेग आदि ने (2014) में जम्मू–कश्मीर में अतीष के 99–300 एकलों को 4 कि0मी0^{2} क्षेत्र में रिपोर्ट किया है।

संरक्षण स्थिति

एकोनीटस हेट्रोफाइलम को देश में आईयूसीएन की लाल सूची में श्रेणीबद्ध किया गया है (वेद आदि 2015), इसे सीएएमपी क्षेत्रीय कार्यशाला में अति संकटापन्न प्रजाति के रूप में आकलित किया गया है। इस कार्यशाला का आयोजन 2003 और 2010 में किया गया था। इसकी आबादी में तेजी से कमी आने कारण हिमाचल प्रदेश में वनीय आबादी का अचानक कम हो जाना है (वेद आदि 2003; गोराया आदि 2013)। कुमार आदि (2016) ने इसका कारण वनों से इसका अतिदोहन माना है।

संभावित खतरे

इस प्रजाति के लिए कई संभावित खतरे हैं, जैसे वासस्थलों की कमी, अनियमित संग्रह पद्धतियां, अवैध व्यापार, अतिदोहन, अतिचराई तथा लम्बे बीजवर्ष और पौंध मृत्यता (बेल्ट आदि 2003; बेग आदि 2006)। इसके अलावा अप्रशिक्षित और अकुशल मजदूर, सुदूर स्थलों में वन कर्मियों की उपस्थिति और उत्तम स्थलों में पदयात्रा की अधिकता भी इसके ह्रास के कारण हैं (राई आदि 2000)।

औषधीय उपयोग

जनसाधारण तथा उच्चवर्ग दोनों में भारतीय स्वास्थ्य रक्षण स्थितियों में इसके प्रकंद का औषधीय उपयोग अत्यन्त प्रचलित है। इसका उपयोग मुख्यतः बुखार, गठिया और पेट दर्द में किया जाता है। इसके प्रकंद का उपयोग पेचिस, गैस्टिक, सिरदर्द, आंतों के दर्द, वातोन्माद, मलेरिया, कृमिरोग, पक्षाघात, उल्टी और पाईल्स में किया जाता है। पादप के गुण हैं : यह शाक्तिवर्धक, कामोद्दीपन, तापशोधन तथा गर्मावस्था,

एलेक्सीटेरिक, फेब्रीफ्यूज, स्तंभन, पेट दर्द, हाजमा और रजोधर्म नियमित करने में काम आता है। मुख्य सक्रिय रसायन जो घाव भरने के काम आते हैं इस प्रकार हैं :– एस्टाईन, हेट्रोटीसाईन, हिस्टीसाईन, हेट्रोफाईसाईन, हेट्रोफीलिना, हेट्रोफिलीडाइन, एटीडाईन तथा हाईटीडाईन, एकोनीटिक अम्ल, टेनिक अम्ल, लेईक का मिश्रण, पालमीटिक अम्ल, श्रीएरिक, ग्लाईसी राईड्स। इसमें मण्ड तथा शर्करा के अतिरिक्त वानस्पतिक श्लेष्मक भी पाये जाते हैं (समरत आदि 2008)। इसका उपयोग विशेष जड़ीय मिश्रण बनाने भी किया जाता है जैसे बाला त्रतुर्वदा चूरण, अतिविसादी चूरण, अतिविषादी बटी, खादीरादी वटी, कुटिया घान वटी तथा नस्रेंदाद कश्याम (सिंह 2017)। औषधीय उपयोग के साथ–साथ इसकी पत्तियों और जड़ों को वनस्पति स्रोत माना जाता है (कंकेल 1984; खारे 2004)।

बाजार और व्यापार

पश्चिमी हिमालय के उप तुंगीय चारागाहों से विभिन्न एकोनीटम प्रजातियों से प्रकंद निष्कर्षित किये जाते हैं, जिन्हें कच्ची औषधि के रूप में बेचा जाता हैं। बाजार में बेचे जाने वाले अतीष प्रकंदों के आकार और प्रकार में काफी अन्तर होता है। बाजार में अतीष की तरह लगने वाले दूसरे पादपों के प्रकंद की मिलावट किये जाने का अंदेशा भी है (गोराया तथा वेद 2017)

एकोनीटम हेट्रोफाईलम का बाजार नमूना 📷 जी एस गोराया

भारत में जंगल से एकत्र किये गये एकेनिटम के अंगों का निर्यात करना वर्जित हैं किन्तु संवर्धन सामग्री से प्राप्त अंगों का निर्यात किया जा सकता है। घरेलू जड़ीय उद्योग और ग्रामीण घर–गृहस्थों में एकोनीटम हेट्रोफाइलम की वार्षिक खपत क्रमश : 127.65 तथा 25.80 एमटी रिपोर्ट की गई है जबकि कच्चे औषध का वार्षिक व्यापार 100–200 एमटी आकलित किया गया था (गोराया तथा वेद 2017)। समन्त आदि (2008) के अनुसार बड़े बाजारों जैसे कुल्लु, सोलन, देहरादून, अमृतसर और दिल्ली में एकोनीटम हेट्रोफाईलम का मूल्य वैविध्य 2200± 282.84 से 4800± 282.84 (रू0 कि0ग्रा0±एडी) है। **(तालिका 3)**

तालिका 3 : विभिन्न बाजारों में एकोनीटस हेटरोफाइलम का मूल्य

क्र.सं.	बाजार /स्थान	बाजार मूल्य (रू0/कि0)	औसत बाजार मूल्य (रू0/कि0±एसडी)
1.	कुल्लू	2200-2400	2200 ± 283
2.	सोलन	3900-4300	4100 ± 283
3.	देहरादून	3700-4400	4050 ± 495
4.	अमृतसर	4600-5000	4800 ± 283
5.	दिल्ली	3300-4000	3850 ± 495

कुमार आदि (2021) के अनुसार बड़े बाजारों जैसे उदयपुर (लाहौल), किलांग, मनाली तथा अमृतसर में ए. हेट्रोफाईलम का बाजार मूल्य औसत से उच्च रिकार्ड किया गया जो 1766.66145 से असामान्य रूप से उच्च 10.00 1154 ;रू0/कि0एसडी) था । (तालिका 4)

तालिका 4 : विभिन्न कच्चे औषध बाजारों में *एकोनीटम हेट्रोफेलम* का मूल्य

क्र.सं.	बाजार	बाजार मूल्य (रू0/कि0)	औसत बाजार मूल्य (रू0/कि0±एसडी)
1.	उदयपुर, लाहौल	2000-2500	1766.66±145
2.	किलार, पांगी	4000-6000	4166.66±601
3.	केलांग, लाहौल	3500-5000	4000±289
4.	मनाली	8000-10000	9000±577
5.	अमृतसर	10000-12000	10000±1155

एचपीएफडी (2017–2018) के अनुसार 2017–18 और 2018–19 में लाहौल और पांगी से निष्कर्षित स्कोनीटम हेट्रोफाईलम प्रकन्दों का आकलित भार 187 क्वेंटल था। इस आकार में से 104.35 क्वेंटल जड़ों को पांगी वन प्रभाग, चम्बार से एकत्र किया गया था जिसके लिए स्थानीय लोगों/व्यापारियों को साची, किलार तथा पर्थी वन प्रभागों में ए. हेट्रोफाईलम एकत्र करने के लिए 74, परमिट दिये गये थे (एचपीएफडी, 2018–2019)। ए.हेट्रोफाईलम की जंगली आबादी तीव्रता से कम होने और व्यापार की अधिकता होने के कारण संकटापन्न प्रजातियों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की अवधारणा को शामिल करना प्रस्तावित है, जो अभी तक नहीं हुआ है।

उत्तम पैदावार और एकत्रण पद्धतियां

अतीष के एकत्रण के लिए वाणिज्यिक पैमाना स्थापित करना आवश्यक है। जड़ी उद्योग में वनीय आबादी की मांग बढ़ाने के कारण उपज पर दबाव बढ़ रहा है। अतीष के प्रकन्द जमीन के भीतर होते हैं जिन्हें खोदकर निकालना होता हैं। उत्तम एकत्रण पद्धतियों के अभाव में इस प्रकार अतीष की आबादी पर प्रतिकूल समाघात पड़ता है।

अतीष की उत्तम एकत्रण पद्धति का उद्देश्य अधिकतम उत्पाद प्राप्त करने के साथ–साथ उत्पाद में सतत् आधार पर एल्कालोईड मात्रा प्राप्त करना और उत्पाद की दीघायु कायम रखना है। परम्परागत एकत्रण पद्धति की जांच करने पर पता चलता है कि बाजार में बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए अतीष के प्रकंदों को (क) परिपक्व होने से पहले ही एकत्र किया जाता है (ख) बीज पूरा पकने से पहले ही सड़ जाता है (ग) अधिक खुदाई करने से आसपास के पादपों को नुकसान पहुंचता है (घ) पूरे प्रकन्द को उखड़ना गलत है (च) जिस क्षेत्र से प्रकन्द एकत्र किये गये हों उसे प्रतिपूर्ति के लिए आराम दिया जाना चाहिए। खराब एकत्रण प्रहस्तन से एकत्रित उत्पाद क्षतिग्रस्त हो जाते हैं जिससे वन संसाधानों पर अधिक दबाव पड़ता है। इसलिए वनीय एकत्रण कर्ताओं को शिक्षित करना आवश्यक है ताकि अत्यधिक दोहन और खराब दोहन के कारण हो रहे नुकसान को कम किया जा सके और एकत्रण के बाद प्रहस्तन पद्धतियां कारगर रह सकें।

एकत्रण

सतत् एकत्रण संरचना की दृष्टि से अतीष के लिए निम्नलिखित उत्तम एकत्रण पद्धतियों को अपनाने की सलाह दी जाती है।

एकत्र क्या करना है : अतीष के मामले में प्रकंदों को एकत्र करना होता है। पहली तथा उत्तम एकत्रण तकनीकों में अतीष के उखाड़ने योग्य प्रकंदों की पहचान करनी होती है ताकि अनावश्यक खुदाई न करनी पड़े और युवा पौधों तथा अन्य पादपों को नुकसान से बचाया जा सके। प्रकंद के ऊपरी भाग में पुनरूत्पति की अच्छी क्षमता होती है इसलिए ऊपरी भाग को काटकर खोदे हुये गड़ढे में रखकर चारों ओर मृदा भर देनी चाहिए।

कौन सी स्थिति : पादप की फसल तब करनी चाहिए जब प्रकंद और बीज परिपक्व हो जायें और बीज वितरण के लिये तैयार हो जायें। इस स्थिति में आने के लिए पादप को तीन मौसम लगते हैं। इसके अलावा, पुनरूत्पादक फेज की पूर्णता में ऊंचाई महत्वपूर्ण होती है। उदाहरण के लिए तुंगीय क्षेत्रों में अक्टूबर का अन्तिम सप्ताह और नवम्बर का पहला सप्ताह उपयुक्त होता है जबकि कम ऊंचाई वाले भागों में अक्टूबर का पहला पखवाड़ा उपयुक्त होता है। एनएमपीबी (2008) के अनुसार प्रति पादप उच्चतम उत्पाद अक्टूबर नवम्बर में प्राप्त किया जाता है जबकि उच्चतम सक्रिय घटक जुलाई–अगस्त में प्राप्त होते हैं। अतः एकत्रण ऐसी स्थिति में करने चाहिए जब उच्चतम उत्पाद प्राप्त हो जिनमें एल्कालोईड की मात्रा भी अधिक हो।

कब : अतीष प्रकंद के एकत्रण में मृदा को खोदना होता है जिसके बाद बारीश होने से मृदा अपरदन का खतरा बढ़ जाता है। अतः बरसात के बाद ही खुदाई करना उचित होता है। लाहौल पांगी भू–दृश्य में परम्परागत धारणा है कि उच्च तुंगीय क्षेत्रों से भादो के बीच अर्थात मध्य सितम्बर में प्रकंद निष्कर्षण करना चाहिए। यह मानना होगा कि इस समय तक प्रकंद परिपक्व हो जाते हैं बीज पक जाते हैं और बरसात का मौसम समाप्त हो जाता है। इस मौसम में अधिकतम एल्कालोईड युक्त उपयुक्तम उत्पाद प्राप्त होता है।

कैसे : खुदाई के लिए उपयुक्त उपकरण होने चाहिए जो प्रकन्द को बाहर निकालने योग्य खुदाई करें और साथ वाले पादपों का नुकसान न करें। सलाह दी जाती है कि प्रकंद का ऊपरी हिस्सा अलग करके खोदी हुई जगह में रखना चाहिए जिससे पुनरूत्पादन हो सके।

कितना : केवल उन्हीं प्रकंदों को उखाड़ना चाहिए जिनमें सफेदी लिए हुये दो प्रकंद और दो गहरे रंग के प्रकंद हों तथा छोटे पादपों का निष्कर्षण नहीं करना चाहिए। परिपक्व पादपों में से एक तिहाई को पुनरूत्पति के लिए रखना चाहिए। प्रबंधन हेतु सलाह दी जाती है कि उपज को बनाये रखने के लिए जिन खंडों से एकत्रण किया जाता है उनकी तीन वर्ष तक देखरेख की जानी चाहिए।

फसलीकरण के बाद प्रहस्तन

सर्वप्रथम खोदे गये प्रकंदों को बाजार तक पहुंचाने से पहले उनकी श्रेणीकरण करना चाहिए। अवांछित कचरे को हटाना चाहिए। नमी मात्रा घटने के लिए प्रकंदों को हाथ से धोना चाहिए और फिर सुखाना चाहिए। सुखाने की प्रक्रिया कमरे के तापमान या अंशिक छाया में अपनानी चाहिए। सीधे सूर्य की रोशनी में कदापि नहीं सुखाना चाहिए। सुखाने के बाद प्रकंद को उनकी आयु और आकार के आधार पर श्रेणीबद्ध करना चाहिए। पूर्णतः शुष्क प्रकंदों को जूट के थैलों गन्नी बैग्ज, ओवन सैक्स, काष्ठ के बक्सों तथा वायुरूद्ध पालीथिन की थैलियों में भण्डारित करना चाहिए और उसके बाद अगले प्रक्रमण के लिए उनका परिवहन करना चाहिए (शर्मा आदि 2013)।

संवर्धन एवं प्रसारण

बाजार में अतीष के प्रकंदों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए इसका संसाधन आधार बढ़ाना होगा जबकि इसकी वनीय आबादी को बढ़ाने के प्रयास जारी हैं। अतीष का उत्पादन बीज द्वारा उत्पादित करके प्रकंद के अंगों के जरिये या पत्तीदार तनों के जरिये नकद फसल के रूप में किया जा सकता है।

बीज प्राप्त करने के लिए अतीष कैप्सूल्स (फलों) को हल्का भूरा होने के बाद एकत्रित करना चाहिए। जब वे बीज विस्तार के योग्य हो जायें। बीजों के उत्तम अंकुरण के लिए उन्हें अक्टूबर से मध्य नवमबर तक सुबह के समय एकत्र करना उपयुक्त होता है (एनएमपीबी 2008)। 45–50 डि.से. गरम पानी में 90 सेकेंड तक प्राथमिक उपचार देने पर अंकुरण प्रक्रिया बढ़ जाती है (पाण्डे आदि 2005)। भविष्य में उपयोग के लिए बीज को 4 सें0 तापमान और 5% नमी स्तर में कम तापमान में रखना चाहिए (कुशवाहा)।

इस प्रजाति के लिए सामान्यतः रेतीली, दुमट्टी, छिद्रिल तथा अम्लीय मृदा उपयुक्त होती है जबकि पादप के उपयुक्त विकास और वृद्धि के लिए जलवायु ठण्डा होना चाहिए। 2200–4200 मीटर की ऊँचाई तक इसकी खेती की जा सकती है। भूमि को तैयार करने के दौरान एक हेक्टेयर में 75–80 क्वेंटल खाद की आवश्यकता होती है और भूमि को दो बार जोतकर 15–20 दिनों तक छोड़ देना चाहिए। बुआई के लिए एक हेक्टेयर में एक कि0ग्राम बीज होने चाहिए। बोआई अक्टूबर–नवम्बर में 30 सेंटीमीटर X 30 सेंटीमीटर की दूरी पर करनी चाहिए। निचले भागों में बोने पर छः महीनों तक 24 घंटें में एक बार सिंचाई करनी चाहिए। गर्मी और बरसात में निराई–गुड़ाई करनी चाहिए (सामन्त आदि 2008)। तीसरे उपज मौसम के अन्त में 1–2 छोटे प्रकंदों को पतझड़ के मौसम में ऊपरी भाग को एकत्र कर तैयार करना चाहिए जिन्हें बसन्त के मौसम में पुनः रोपित करना चाहिए। सामान्यतः उपज के पहले वर्ष में नये तनों पर पत्तियां उगती हैं जबकि संबंर्धित पादप, वृद्धि के दूसरे वर्ष पुष्प उत्पन्न करते हैं (पारामणिक 2012)। वानस्पतिक विस्तार के लिए मध्य और आधारिक भाग की बजाय ऊपरी भाग अच्छा माना जाता है (एनएमपीबी 2008)।

डैक्टोलोरिजा हेटाजीरिया (डी.डॉन) एसओओ

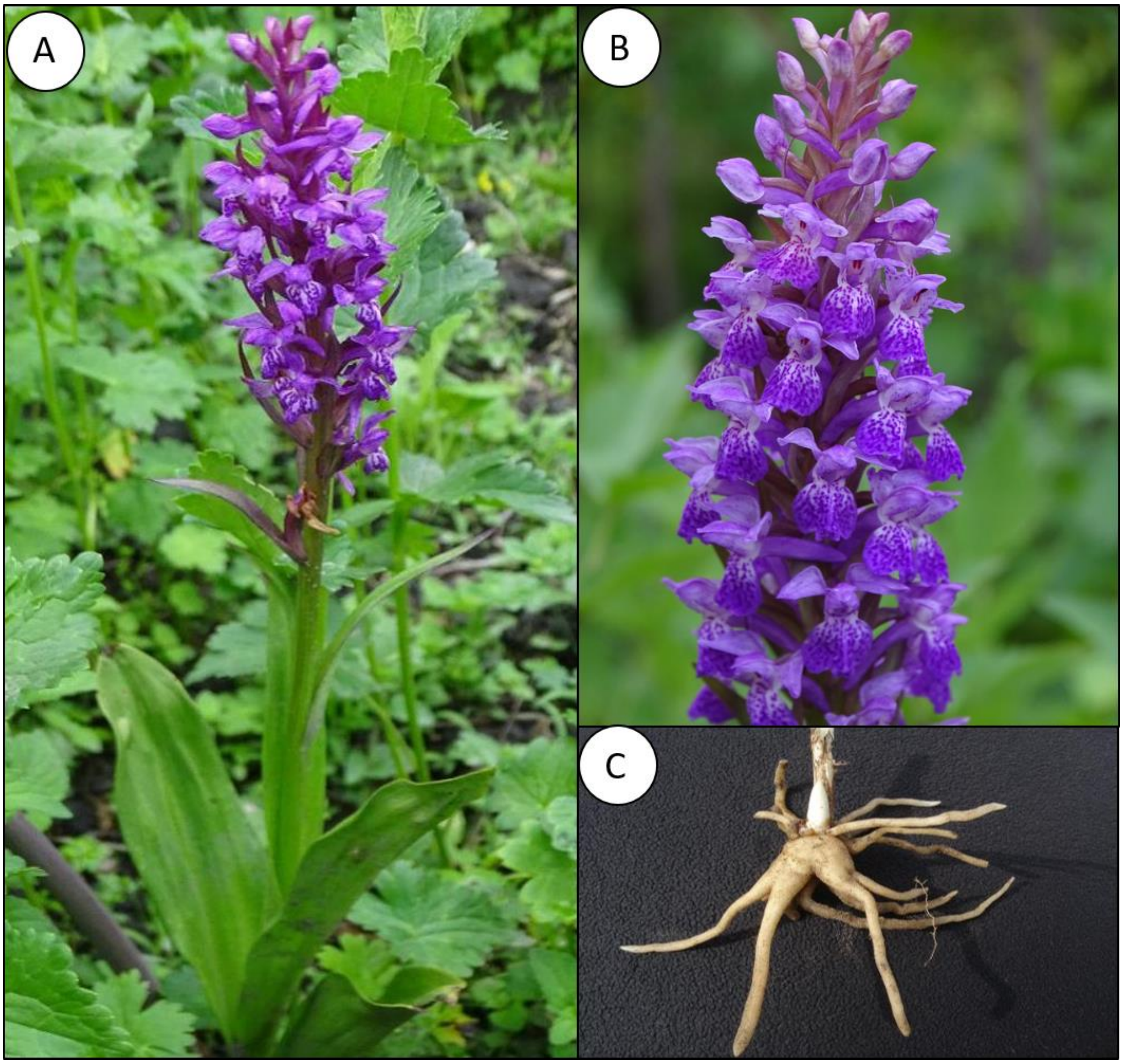

डैक्टोलोरिजा हेटाजीरिया : **ए**–पूरा पौधा **बी**–पुष्प **सी**–जड़ *अमित कुमार*

प्रजाति तथा अवस्थिति प्रोफाईल

युत्पति : *डैक्टोलोरिजा हेटाजेरिया,* ओर्कीडासाई कुल का सदस्य है। *डैक्टोलोरिजा* का नामक ग्रीक शब्द 'डेक्टालोस– से लिया गया हैं जिसका अर्थ है अंगुली तथा रिजा का अर्थ है हथेली के आकार के प्रकंद अर्थात दो से पांच पिण्डक वाले प्रकंद।

देशी नाम : हथजादी, हथपंजा

व्यापारिक नाम : सलम्पंजा

यूनानी नाम : बुजीदान, सलब मिश्री

सामान्य प्रचालित नाम : सलम पांजा, हत्ताजारी पांजा, हत्तापांजा, रूलीय

आयुर्वेदिक नाम : सलमपांजा

अंग्रेजी नाम : हिमालयन मार्श आर्किड, स्पाटेड आर्किडस

वासस्थल एवं वितरण

वासस्थल :

डेक्टीलोरिजा हेटेजेरिया प्रकाश को चाहने वाली प्रजाति है जो 2500–5000 एम की ऊँचाई तक व्यापक रूप से घनी आबादी में वितरित है। यह प्रजाति खुले घास ढालों में अधिक उगती है। यह तुंगीय चारागाहों और शीतनम स्थलों में भी प्रचुरता से उगती है (भट्ट आदि 2005)। इसकी मुख्य सह–प्रजातियों में रोडोडेंडान अन्योपोजोन, नार्डोस्टेकिस जटामांसी तथा एकोनीटम शामिल हैं (प्रसाद 2016)।

वैश्विक वितरण :

यह पादप आईएचआर में मूल रूप से उगती है और देशज है। इसका वितरण पाकिस्तान, चीन, अफगानिस्तान, नेपाल, तिब्बत और भूटान में है। भारत में डी.हेटेजेरिया को जम्मू–कश्मीर, सिक्किम, अरूणाचल प्रदेश, उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश में रिपोर्ट किया गया है (पंत तथा रीचन 2012)। उत्तराखंड में इसे कुमाऊं और उत्तरकाशी में रिपोर्ट किया गया है। हिमाचल प्रदेश में हाथाजदी, कुल्लू (सेरज, चंद्रखनी, पार्वती घाटी, कनवार, मनाली और कैस, लैग घाटी, जीएचएनपी, जगलसुख तथा हामता कैचमेंट, छाकीनाल, मण्डी (शिकारी देवी, नारगू अभ्यारण, कमरूनाग), शिमला (हातू, चपाल, रोहडु, कोटगढ़), चम्बा (मरमौर, डलहौजी, पांगी, सतरून्डी), किन्नौर तथा अन्य तुंगीय क्षेत्र), कांगड़ा में चोपता, बडा भांगल), सिरमौर, लाहौल और स्पीती में (सिस्सू, कोक्सा, शेगू, मुड, माने, रंगरिक तथा स्पीती घाटी) में पाई जाती है (कैसांग 2016)।

आकृति विज्ञान एवं ऋतुजैविकी

वर्गीकरण विवरण :

स्थलीय जड़ी है जो 60से0मी0 की ऊँचाई तक बढ़ती है। इसके प्रकन्द एक दूसरे से जुड़े होते हैं। इसकी पत्तियां चौड़ी होती है जिनकी नोक बल्लम के नोक की तरह नुकीली या आयताकार दीर्घवृत्तीय होती हैं। पुष्प नीले रंग बैंगनी, गुलाबी या कभी–कभी सफेद होते हैं जो घने पुष्पित समुहों में दर्शनीय होते हैं (बरात तथा कुर्मी 2006)। इस पादप का मुख्य अभिलक्षण है कि यह अत्यधिक बर्फ गिरने पर भी सीधा खड़ा रहता है। पुष्पण असीमाक्ष 5.0–15.0 से0मी0 होता है जो कई फूलों से घिरा रहता है। इसके पुष्प बैंगानी तथा सहपत्र हरे होते है जो लेन्स आकार में पाये जाते हैं। निचला सहपत्र फूलों से लम्बा होता है और ऊपरी सहपत्र कुछ छोटा होता है। इसके फूल करीब 1.8 से0मी0 लम्बे होते हैं जिनमें मोड़दार स्पर होता हैं। इसके सेपल्स तथा पंखुड़िया करीब–करीब बराबर होती हैं, जिनमें तीन का एक समूह होता है और बाकी दो बाहर की तरफ फैले होते हैं। लिप गोल और उथला तथा तीन पिण्डक युक्त होता है। इस पर गहरे बैंगानी धब्बे होते है। स्पर सीधा, सिलिंडर की तरह, कभी कभी लम्बा और ओवरी की तरह होता है। कॉलम बहुत छोटा होता है, इसके अग्रभाग में एन्थर एडनेट ग्लोबोस में संलग्न होते हैं। विसिड ग्रंथिया छोटे पाउच में बंद होती हैं और 2 पिण्डकों पर झूलती रहती हैं।

पुष्पण और फलन : क्रमशः जून–जुलाई और अगस्त सितम्बर

प्रयुक्त अंग : जड़े तथा प्रकंद

आबादी स्थिति

डी. हेटेजीरिया महत्वपूर्ण सजावटी तथा औषधीय पादप है जो कम अंकुरण दर, वासस्थल विखंडन तथा अति मानवीय दोहन के कारण तेजी से कम हो रहा है। इन्डोस्पर्म कम होने के कारण इसका बीज सहजीवी फंगी में प्राकृतिक स्थितियों में अंकुरित होता है (अग्रवाल तथा जेट्टलर 2010) औषधीय उपयोग में भारी मांग होने के कारण वनीय संसाधानों में इसक अतिदोहन किया जाता है। बारघाट आदि (2012) के अनुसार, वासस्थल विखंडन और आबादी ह्रास के कारण इसकी आनुवंशीय विविधता खतरे में पड़ सकती है। सिंह आदि (2019) के अनुसार जीएचएनपी में डी.हेटेजीरिया का आबादी घनत्व 0.03–3.58 एकल एम^2 के करीब है।

संरक्षण स्थिति

डी. हेटेजीरिया को दुर्लभ (समन्त आदि 2001), अत्यन्त संकटापन्न (काला, 2000, गौराया आदि 2013, गोराया तथा वेद 2017), संकटापन्न (चौहान आदि 2014) में श्रेणीबद्ध किया गया है और सीआईटीईएस की तालिका II में सूचीबद्ध किया गया है (उनियाल आदि 2002)।

संभावित खतरे

डी. हेटेजेरिया को अत्यन्त धीरे उगने वाली तथा कम पुनः उत्पन्न होने वाली प्रजाति के रूप में माना जाता है क्योंकि इसके परागण में विशिष्टता होती है और कवकविज्ञानीय सहसंबद्धता आवश्यक होती है (भट्ट आदि 2005)। उच्च औषधीय और खाद्य उपयुक्तता के कारण राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय स्तर पर इस प्रजाति की मांग बहुत अधिक है। मानवजनित गड़बड़ियां जैसे चराई का दबाव, प्रसारण की निम्न दर, कमजोर बीज अंकुरत, वासस्थल विनाश, अतिदोहन, संग्रह हेतु उचित प्रक्रिया तथा प्रसारण की कमी, कुछ ऐसे कारक हैं जिससे यह प्रजाति अपने प्राकृतिवासों से लुप्त होती जा रही है (पंत तथा रिंचान 2012)।

प्रकंदों के गुण

शीतल करना, प्रशमक, स्तंभित करना, कामोद्दीपन, शमक, पुनर्योवन तथा नर्व टॉनिक। यह मधुमेह, पक्षाघात, अतिसार, फिथिसिस, जीर्णअतिसार, प्रजनक कमजोरी, तंत्रिका कमजोरी, क्षीणता, प्रभष्तकीय तथा सामान्य दुर्बलता में उपयोगी है। उदरशूल में इसके प्रकंद का काढ़ा बनाकर दिया जाता है। पाउडर का उपयोग बुखार उतारने में किया जाता है। खून बहाव रोकने के लिए इसे घाव पर लगाया जाता है। इसकी जड़ों का उपयोग मूत्र संबंधी रोंगों में किया जाता है (बेराल तथा कुर्मी 2006)। घाव भरने में इसके रासायनिक घटक ग्लूकोसाईड है, जो कढ़वा पदार्थ है। साथ ही मण्ड, श्लेष्मक, श्वेतक, कष्शील तेल तथा राख भी उपयोज्य होता है। मुख्य सक्रिय घटकों में डैक्टीलीरिस ए–ई, डक्टीलोसिस ए तथा बी तथा लिपिड्स शामिल हैं।

बाजार एवं व्यापार

इसमें उच्च मूल्य का द्वितीयक उपापचय डेक्टोलोरिन तथा डेक्टीलोज होता है जिनका औषधीय क्रियाकलापों में प्रचुरता के कारण इसकी वार्षिक मांग 5000 टन प्रतिवर्ष हैं।

इस प्रजाति का वनीय वासस्थलों में अतिदोहन हुआ है जो चिन्ता का विषय है। स्थानीय लोग उच्च मूल्य के इस पादप का अवैध व्यापार करते हैं। स्थानीय लोग डी हेटेजिरिया की सूखी जड़ों को एकत्र करते हैं जिसे 100–200 रू0 प्रति किलो के हिसाब में बेचा जाता है (गोराया तथा वेद 2017)। आकलन के अनुसार एक कि0ग्रा0 शुष्क जड़ों के लिए 90–100 परिपक्व पादपों का दोहन किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप इसकी आबादी तेजी से कम हो रही है जिससे साफ है यदि इसी प्रकार अतिदोहन किया जाता रहा तो यह जड़ी कुछ ही वर्षों में विलुप्त हो जायेगी। भारत में डक्टीलोरिया प्रजाति के वनीय संग्रह का निर्यात प्रतिबंधित है। उत्पादित सामग्री से दवाई के लिए कच्चा माल निर्यात किया जा सकता है। कच्चे डेक्टोलोरिया हेटेजीरिया का घरेलू जड़ी उद्योग तथा शहरी जड़ी उद्योग क्रमश : 9.03 था जिसका वार्षिक व्यापार करीब 10 एमटी था (गोराया तथा वेद 2017)।

उत्तम फस्लीकरण एवं संग्रह तकनीकें

डी हेटेजीरिया उच्च मूल्य का औषधीय पादप है जिसका उपयोग मानव शरीर के लिए उपयोगी होने के कारण सदियों से किया जा रहा है क्योंकि यह इच्छा जागृत करने और कामशक्ति बढ़ाने के लिए प्रभावशाली है। विशेष द्वितीयक मीटावोलाईट की उपस्थिति के कारण इस पादप में ये गुण पाये जाते हैं। सतत् उत्पादन के लिए पादपों के पुष्पित होने के उपरान्त ही प्रकंद एकत्रण करना चाहिए। मातृ–पादप का संग्रह करते समय एक अपरिपक्व प्रकंद को मृदा की परत के अन्दर छोटे फावड़े से मृदा में दबा देना चाहिए। बीज परिपक्व होने के उपरांत एकत्रण का समय सितम्बर–नवम्बर के बीच होता है। डी हेटेरिजा के प्रकंद एकत्र करते समय आसपास की वनस्पतियों का खयाल रखना चाहिए। चक्रानुक्रम के अनुसार पादप संग्रह करनी चाहिए। फस्लीकरण के लिए चक्रानुक्रम 4–5 वर्ष है। निरंतर उत्पाद की मात्रा 80% है। दुर्लभ और संकटापन्न आर्किड प्रजातियों के रक्षण के लिए स्वस्थानिक तथा परास्थानिक दोनों पद्धतियां महत्वपूर्ण हैं।

फसलीकरण

सतत् उत्पादन और संग्रह संरचना बनाये रखने के लिए निम्नलिखित उत्तम फसलीकरण की सलाह दी जाती है।

क्या एकत्र करना है : हथजारी के मामले में प्रकन्दों को एकत्र किया जाता है। अनावश्यक खुदाई और अन्य पादपों को नुकसान से बचाने के लिए सर्वप्रथम हथजारी पादप की पहचान आवश्यक है।

किस स्थिति में : उच्च उत्पाद के लिए प्रकंदों को पांच वर्ष बाद उखाड़ना चाहिए तथापि 2–3 वर्ष बाद भी इनका एकत्रण किया जा सकता है। सितम्बर के अन्तिम सप्ताह में बीज परिपक्व हो जाने के उपरांत प्रकन्द एकत्र करने चाहिए।

कब : हथजारी प्रकंद को उखाड़ने के लिए मृदा को खोदना आवश्यक होता है जो वर्षा होने पर मृदा

अपरदन का कारण बनता है। इसलिए इसका एकत्रण वर्षात के बाद करना चाहिए। वर्षात समाप्त होने तक प्रकंद भी परिपक्व हो जाते हैं, बीज पक जाते हैं। इस मौसम में अधिकतम उत्पाद भी प्राप्त होता है।

कैसे : उचित ओजारों से आवश्यक खुदाई करनी चाहिए जिससे आसपास की वनस्पतियों को नुकसान पहुंचायें बिना प्रकंद को उखाड़ा जा सके। सलाह दी जाती है कि प्रकंद का ऊपरी भाग उखाड़ने के तुरन्त बाद काटकर वहीं दबा देना चाहिए ताकि हसकी पुनरूत्पति हो सके।

कितना : केवल परिपक्व प्रकंदों का फस्लीकरण करना चाहिए और युवा प्रकंदों का दोहन नहीं करना चाहिए। परिपक्व पादपों मे से एक तिहाई को पुनरूत्पति हेतु सुरक्षित रखना चाहिए। 2–3 वर्ष के अन्तराल में उत्पादन जारी रखने के प्रबंधन हेतु 2–3 वर्षो में फस्लीकृत खंडों का दौरा करना चाहिए।

फस्लोपरांत

उत्तम परिणामों को प्राप्त करने के लिए प्रकंदों को विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरना होता है। अवांटित और क्षतिग्रस्त सामग्री को हटाया जाता है। सुखाने से पहले इन्हें साफ किया जाता है और पैकिंग करने से पूर्व इनकी गुणवत्ता सुनिश्चित की जाती हैं। इसके लिए इन्हें हल्की छाया में सुखाया जाता है ताकि इनका ह्रास न हो और हन्हें सुरक्षित रूप से भण्डारित किया जाता है। उचित शुष्कन के पश्चात पुराने प्रकंदों को नये प्रकंदों से अलग किया जाता है। प्रकंदों की बाहरी झिल्ली हटाई जाती है जिससे ये हल्के पीले रंग के हो जाते हैं। तब इन्हें धूप में सुखाया जाता है और लम्बे समय तक भण्डारित किया जा सकता है। सभी प्रक्रियाओं को पूर्ण करने के उपरान्त हन्हें संदूषण और अपघटन से बचाना चाहिए। बाजार ले जाने से पहले वायुरूद्ध थैलों में पैक करना चाहिए (नौटियाल और नौटियाल 2004)।

खेती और प्रसार की तकनीकें

डेक्टोलोरिया के लिए अम्लीय तथा रेतीली दुमट्टा मृदा उपयुक्त होती है जिसमें आर्गेनिक खाद और पर्याप्त नमी हो। स्वस्थ पादप के विकसित होने और जड़ पकड़ने के लिए 80–90 प्रतिशत आर्द्रता आवश्यक होती है। पुष्पन का मौसम जून के प्रारंभ से जुलाई के अन्त तक होता है। इसके बाद जड़न का मौसम अगस्त–सितम्बर के बीच होता है। प्रकंद का उपयोग करने से यह सामान्यतः वानस्पतिक रूप से प्रसारित होता है जिन्हें पुष्पन के समय एकत्र किया जाता है। यह बीजों के द्वारा भी प्रसारित होता है। भूमि तैयार करने के लिए एक हेक्टेयर में 5 टन खाद की आवश्यकता होती है। कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों (1800–2000) में खाद की आवश्यकता बढ़ जाती है जो करीब 10.0–15 टन हेक्टेयर होती है। बोआई अगस्त–सितम्बर के महीने 15 से.मी. X 15 से.मी. पर की जानी चाहिए। परिपक्व फलों के सितम्बर में एकत्र किया जाता है और 2–3 सप्ताह तक वायु शुष्कित किया जाता है और तत्पश्चात प्रयोग होने से पहले कम तापमान में भण्डारित किया जाता है (बारघाट 2015)। छोटे आकार के होने के कारण बीज बोने से पहले ही रेत के साथ मिश्रित हो जाते हैं। अंकुरण के लिये बीजों को माइकोरिजा के साथ सहजीवी होना चाहिए। प्राकृतिक वासस्थलों मे केवल 0.20ः अंकुरण पाया जाता हैं। प्रकंदों को मध्य सितम्बर से अक्टूबर के अन्त तक बीच परिपक्व होने के बाद एकत्र कर लेना चाहिए। प्रकंदों से विकसित पादप दो वर्षो में तैयार हो जाते हैं। सुव्यवस्थित खेत में करीब 3.5 से 4 क्वेंटल/हेक्टेयर प्रकंद प्राप्त किये जा सकते हैं। किन्तु अत्यन्त संकटापन्न प्रजाति के रूप में चिन्हित होने के कारण केवल 80% प्रकंदों का फस्लीकरण करना चाहिए जो स्वस्थानिक संरक्षण के अनुरूप है (चौरसिया आदि 2007)।

ब्यूनियम पर्सीकम (बोईस्स) बी.फेडिट्च.

ब्यूनियम पर्सीकम **(ए)** पुष्प **(बी)** बीज 📷 जी एस गोराया तथा सिपु कुमार

प्रजाति तथा अवस्थिति प्रोफाईल

ब्यूत्पति : ब्यूनियम पर्सीकम (बोईस्स) बी.फेडिट्च प्रजाति अपिआसाई कुल से संबंधित है। हिन्दी में इसे सामान्यतः शाही जीरा कहा जाता है जो शायद स्याही (पर्सी में काला) से बिगड़कर बना है। किन्तु हिन्दुस्तानी भाषाओं में स्याही का अर्थ ''स्याही की तरह काला'' होता है।

देशज नाम : जीरा (लाहौल स्पीती), सिंगू (नियाद), काला जीरा (किन्नौर), ब्लैक कमिन, कालाजीरा, उम्बा, सियाजीरा

व्यावसायिक नाम : काला जीरा

यूनानी नाम : काला जीरा

जनसामान्य नाम : काला जीरा

आयुर्वेद नाम : काला जीरा

संस्कृत नाम : कृष्ना जीरा

वासस्थल वितरण

वासस्थल

ब्यूरेनियम एक सदाबहार सुरभित पादप है जिस पर छोटे गुलाबी या सफेद फूल लगते हैं। इसकी पत्तियां छोटी और भूरे रंग की होती है। तुंगीय शुष्क ढालनों, खासकर लाहौल और स्पीती में वनीय स्थितियों मे उगती है। यह पश्चिमी के सीमित क्षेत्रों में देशज है (सिंह आदि 2009, बेहटोई आदि 2012)। पादप को निकासीयुक्त मध्यम मृदा, हल्की धूप या छांव पसन्द है। हिमाचल प्रदेश में यह लोहौल–स्पीती, चम्बार और किन्नौर, पांगी, मियार घाटी, पट्टन घाटी, गहरघाटी, स्पीती और शांग में 2500 एम से 4000 एम की ऊंचाई पर पाई जाती है (रविकुमार आदि 2018, गुप्ता आदि 2012, चौहन 1999)।

वैश्विक वितरण

यह पादप शीतोष्ण तथा उपउष्मीय क्षेत्र का देशज है। इसे अधिक उष्ण क्षेत्रों में वार्षिक रूप से उगाया जा सकता है। इसका वैश्विक वितरण मुख्यतः उत्तरी एशिया, उत्तरी अफ्रीका, दक्षिणी यूरोप, दक्षिणपूर्वी यूरोप, साइबेरिया तथा पश्चिमी एशिया तक सीमित है। भारत के अलावा यह ईरान क उच्च तुंगीय भागों तथा अफगानिस्तान, पाकिस्तान और तजकिस्तान के कुछ भागों में पाया जाता है (पंवार 2000, हेनलेट आदि 2001)। भारत में यह कश्मीर जैसे पद्दार घाटी (गुप्ता आदि 2013) तथा गुरेज घाटी (गोराया आदि 2013) तथा चम्बा, कन्नौर, लाहौल और स्पीति में 1500–3500 एस की ऊँचाई में पर हिमाचल प्रदेश के उच्च तुंगीय भागों में पाया जाता है (रविकुमार आदि 2018, गुप्ता आदि 2012, चौहान 1999)। यह उत्तराखंड के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में भी पाया जाता है (चहोटा आदि 2017)।

जीनस ब्यूनियम की करीब 166 प्रजातियां हैं, जिनमें बी पर्सीकम, बी करूम, बी बल्बोकास्टिकयम, बी कॉप्टीकम, बी फ्लेक्सोसोम, बी एलीगेन्स, बी सिलिन्ड्रीकम तथा बी कैरोफाइलोसाइड्स शामिल हैं जो मध्य एशिया कौकासस, क्रीमिया तथा यूरोप में विद्यमान हैं (वैसिल्वा आदि 1985)।

आकृति विज्ञान तथा ऋतुजैविकी

वर्गीकरण विवरण :

बी पर्सीकम की ऊँचाई 30 से0 से 80 से0 मी के बीच होती है, जिसकी शाखायें संकुचित या बड़ी–छोटी होती हैं (मण्डेगारी आदि 2012, सोफी आदि 2009)। यह पौधा सीधा खड़ा, जड़ीयुक्त बारहमासी होता है, जो भूमिगत प्रकंदों से उगता है। मध्य भाग से इसके एक या दो तने हो सकते हैं, जिनकी ऊँचाई 40'60 से0मी0 हो सकती है।

पुष्पन और फलन : यह जुलाई के आखरी सप्ताह से अगस्त तक परिपक्व होता है।

संरक्षण स्थिति

कठोर पारितंत्रीय समायोजन के साथ यह प्रजाति संकुचित भौगोलिक परिधि तक सीमित है, जिसके कारण यह जीवनक्षमता और विकास के लिए प्रायः नये क्षेत्रों में प्रविष्ट नहीं हो पाती है। ब्यूनियम पर्सीकम हिमालयी क्षेत्र में संकटापन्न है (चौहान आदि 2020)। इसे संवदेनशील के रूप में सूचीबद्ध किया गया है (गोराया आदि 2013)।

संभावित खतरे

यह प्रजाति केवल अवैध व्यापार तथा अवैज्ञानिक दोहन से ही नहीं बल्कि, वासस्थल क्षेत्र, विशेष भौगोलिक स्थिति और जलवायु स्थिति, विकास कार्य और निम्नीकरण के कारण भी कई तरह के खतरों में पड़ी हुई है, जिससे काला जीरा की वनीय आबादी तेजी से घट रही है (काला 2000, गोराया और वेद 2017)। वास्तव में इसकी वनीय आबादी का ह्रास होने का मुख्य कारण उच्च मांग, असंगठित और विनाशकारी फस्लीकरण है जो लाहौल तथा पांगी में किये गये वर्तमान अध्ययन और सर्वेक्षण का निष्कर्ष है। उच्च हिमालयी क्षेत्र, देशज और स्वस्थानिक जैवविविधता में स्थिति, कायिक विशेषताओं को मुख्य खतरा विशिष्ट स्थलाकृति से है जिसके कारण पारिपद्धति का प्रतिनिधित्व करने वाली विभिन्न टक्सा का तीव्रता से ह्रास हुआ है (काला 2000, श्रीनिवास 2010)।

औषधीय उपयोग

इस पादप के ब्यूत्पन्न अंग मूल्यवान योगिक हैं जिनमें रोगाणुनाशक, मूल सफाई क्षमता, परजीवीरोधी क्षमता, उपचायक रोधीव, जलन शांत करने, मरोड़ ठीक करने की क्षमता होती हैं। इसमें मधुमेहरोधी, अस्यमारोदी, मरोड़रोधी, बावसीर रोधी, ऐंठनरोधी क्षमता के साथ–साथ मूत्रवर्धक के और गैस कम करने के गुण होते हैं जिससे पता चलता है कि इसका उपयोग औषधियों तथा खाद्य उद्योगों में व्यापक रूप से किया गया जा सकता है (हसनजाद आदि 2018, मिराज और कियानी 2016, आगाह आदि 2013, मंडेगरी आदि 2012)। परम्परागत तथा आधुनिक दवाओं में इसके कई चिकित्सीय प्रभाव सामने आये हैं। पर्सीकम का उपयोग जठरशोध तथा मूत्र विकार में किया जाता है। यह सरंध्र उत्तेजक, वातग्रस्त अपच, मंदाग्नि के कारण सिरदर्द, धूप से उत्पन्न जलन में आराम, उदरशूल, अतिसार, हिस्टीरिया के इलाज में भी कारगार होता है। लीवर को ठीक करने में भी इसका उपयोग किया जाता है (सोफी आदि 2009)। बी पर्सीकम का उपयोग खाद्य पदार्थे का स्वाद बढ़ाने, मसालों तथा खुशबु के लिए किया जाता है। पेय पदार्थो में उपयोग के साथ–साथ मिष्ठान तथा अन्य भोजन में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसकी तीव्र खुशबू होती है जो खाना बनाते समय भूनने में अधिक तीव्र हो जाती है। (अमीन्जारी आदि 2017; शरीफिफार आदि 2010; सोफी आदि 2009)। इस पादप का उपयोग खुशबू और श्रृंगार सामग्री में किया जाता है (सलही आदि 2008)।

बाजार एवं व्यापार

भू–दृश्य वाले गांवों कस्बों तथा शहर की मण्डियों में उत्पादन स्तर पर व्यापार श्रंखला का अध्ययन किया गया। वर्तमान अध्ययन से पता चला कि गांव से शहर पहुंचने पर एमएपी का मूल्य बढ़ जाता है। कार्यक्षेत्रीय सर्वेक्षण के व्यापार पर एकल साक्षात्कार, वर्ग विचार–विमर्श किया गया और 29 गांवों तथा स्थानीय बाजारों का दौरा किया गया। इसे सामान्यतः जुलाई के अन्त में और अगस्त का प्रारंभ में एकत्र किया जाता है। 2019 में शुष्कित बीजों की मांग और आय 2500–7000 आईएचआर कि0ग्रा0 पाई गई और वार्षिक व्यापार < 10 एम टी पाया गया (गोराया एवं वेद 2017)। बी. पर्सीनम में आकृति की कम पहचान होने के कारण कम्यूनम साइमीनस की मिलावट की जाती है (बंसत आदि 2018)। इस प्रकार क्षेत्र में बाजार मूल्य में काला जीरा की खपत के बाजार में अस्पष्टता आ जाती है।

कुमार आदि (2021) में काला जीरा बाजारों यथा : उदयपुर (लाहौल), किलार (पांगी), केलांग, मनाली तथा अमृतसर में बी पर्सीकम का औसत बाजार मूल्य 2800±100 से 3100±208.17 रू0/कि0ग्रा0 पाया गया। **(तालिका 5)**

ब्यूनियम पर्सीकम का बाजार नमूना 📷 *हिमांशु बरगली*

तालिका 5 : विभिन्न कच्चे माल वाले बाजारों में बेनियम पर्सीकम का मूल्य

क्र.सं.	बाजार/स्थान	बाजार मूल्य (रू0/कि0) ± एसडी
1.	उदयपुर (लाहौल)	2800±100
2.	किलार (पांगी)	2333.33±88.19
3.	केलांग (लाहौल)	2833.33±202.7 6
4.	मनाली	2500-3000
5.	अमृतसर	3100±208.17

उत्तम फस्लीकरण एवं संग्रह पद्धतियां

उत्तम फस्लीकरण पद्धतियों का उद्देश्य अधिकतम संभव उत्पाद प्राप्त करना है जिसमें अलकोईड की मात्रा सतत रूप से रहे और उत्पाद को लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सके। बीजों को अक्टूबर–नवम्बर में बोया जाता है जो मार्च–अप्रैल में बर्फ पिघलने के बाद अंकुरित होते हैं। 4–5 महीनों तक ठंड में रखने के पूर्व उपचार से अंकुरण दर बढ़ जाती है। अच्छे अंकुरण के लिए पूर्व उपचार करना आवश्यक है। बीज छोटे आकार के होते हैं जिन्हें रेत के साथ मिलाकर 3–4 से0मी0 गहरी मृदा में लाईनों में बोया जाता है।

फस्लीकरण : सतत् फस्लीकरण संरचना की दृष्टि से निम्नलिखित फस्लीकरण पद्धतियों की संस्तुति की जाती है।

क्या एकत्र करना चाहिए : बीज तब एकत्र किये जाते है जब सबसे पुराने फल भूरे हो जाते हैं। पुष्पदाय के टूटने पर बीजों को छिटकने से रोकना चाहिए। बीजों से उगाई गई फसल से फल प्राप्त होने में लगभग 3 वर्ष का समय लगता है जिससे सक्षम बीज उत्पन्न होते हैं जबकि बल्ब के जरिये अनुरक्षित पादपों में फलन शीघ्र हो जाता है।

किस स्थिति में : सामान्यतः जलवायु और तुंगता के अनुसार फसल जुलाई के अन्त या अगस्त में तैयार होती है। फूल मध्य जुलाई से मध्य अगस्त के बीच खिलते हैं और अगस्त के अंत तक पक जाते हैं। बीजों का भूरा हो जाना उनकी परिपक्वता की पहचान है। अतः फस्लीकरण का कुल समय 10–15 दिन होता है।

कब : परिपक्व पादपों को सुबह के समय प्रतिदिन एकत्र किया जाता है। सबसे पुराने फल का रंग भूरा हो जाने पर बीज एकत्र किये जाते हैं। पुष्पछत्र के चटकने पर बीज सावधानी से एकत्र करने चाहिए।

अपतृण तथा नाशीकीट नियंत्रण : खेत अपतृण से मुक्त होना चाहिए 20–25 दिनों के अन्तराल पर 3–4 अपनित्रंयण संक्रियायें करनी चाहिए। युवा पौधों को बचाने के लिए पहले वर्ष हाथ से संक्रिया करनी चाहिए। दूसरे वर्ष पौधे अच्छी ऊंचाई प्राप्त कर लेते हैं इसलिए सम्पूर्ण अपनियंत्रण करना चाहिए। रोमिल कैटर पिलर, अर्मीओमर्म्स तथा सेमी लूपर से प्रकंदों और ऊपरी पर्ण समूहों पर काली सूंडी का आक्रमण होता हैं। काली सूंडी को नियंत्रित करने के लिए 25 कि0हे0 के हिसाब से बीएचसी/एचसीएच का मिश्रण या 5% एल्डरिन धूलि का प्रयोग करना चाहिए। सेमीलूपर, अर्मीओमर्म्स तथा कैटपिलर के लिए दो सप्ताह में मेथिल पाराथोन का प्रयोग करना चाहिए। अकार्बनिक कीटनाशकों का प्रयोग नहीं करने की सलाह दी जाती है। यदि पौधें अच्छी तरह उगे हों तो जैवकीटनाशकों ब्यूवरिया बेसिआना फंगस का छिड़काव 5 एल प्रति लीटर अत्यन्त प्रभावी होता हैं। युवा पौधों में इसका प्रयोग कम मात्रा में करना चाहिए।

फस्लीकरण के बाद प्रहस्तन : फसल की मात्रा और धूप के दिनों की संख्या को देखते हुये उत्तम परिपक्वता और भण्डारण के लिए 3–4 से 7 दिनों तक शुष्क करना चाहिए। पादपों को सुखाने के लिए ढीले बण्डलों में रखना चाहिए। शुष्कित पादपों से बीजों को छड़ी से पीटकर अलग किया जाता है। शुष्कित फलों को हाथों से या थ्रेशर मशीन से मसला जाता है और ओसाई के बाद अलग किया जाता है। बीजों को अंधेरे ठंडे स्थान पर कागज के थैलों या बंद कन्टेनरों में भण्डारित किया जाता है। शुष्कित बीजो को वायुरूद्ध कंटेनरों में भण्डारित करना चाहिए। कुचलने के तुरन्त बाद अगली प्रक्रमण प्रक्रिया भाप आसवन से की जाती है। आसवन में करीब 6–8 घंटे लगते हैं। बीज उत्पाद का औसत 0.5 टन हे0 होता है।

संवर्धन तथा प्रसार

अधिकतम वृद्धि के लिए ब्यूनियम को अच्छी निकासीयुक्त अम्लीय मृदा की आवश्यकता होती है। इसके संवर्धन के लिए अच्छी तरह से अपघटित रेतीली दुमट्ट मृदा उपयुक्त होती है। घास मैदानों में हल्की छाया के नीचे ढालनों में यह खूब बढ़ती है। इसकी उत्तम वृद्धि के लिए निम्न तुंगीय चारागाहों की वनीय मृदा आदर्श होती है। यह प्रजाति वनों, घासयुक्त ढालानों तथा कुछ सीमा तक तुंगीय चारागाहों

पर उगती है। इसके अंकुरण, वृद्धि तथा विकास के लिए 1 से 5 एम तक बर्फ पड़ने वाले कम वर्षा क्षेत्र उपयुक्त माने जाते है। गर्मियों में पुष्पन और बीज स्थाईत्व के लिए कम वर्षण से उच्च उत्पाद, उच्च सुगंध तथा स्तरीय बीज प्राप्त होते हैं। काला जीरा मुख्यतः बीजों से प्रसारित होता है लेकिन इसकी वृद्धि मूलतः प्रकंदों से होती है जिन्हें 10–15 से0मी0 गहरी मृदा में अंकुरण के लिए रखा जाता है। जीवनक्रम बीज उत्पन्न करने के लिए तीन चार वर्ष का समय लगता है। इन्हीं नये बीजों से फसल उगाई जाती है। 7–8 वर्ष पुराने प्रकंदों में उगाये गये पादपों में अधिक शाखायें आती हैं। इनकी ऊँचाई 50–60 से0मी0 तथा फैलाव 40–50 से0मी0 होता है।

भूमि तैयारी तथा मृदा कार्य : 2–3 बार के गहरे हल चलाने के बाद भूमि में अच्छी जुताई मानी जाती है। मृदा के साथ 3500 कि0ग्रा0 हे0 या 280–30 बीघा के हिसाब से खाद मिलाई जाती है। निकासी की सुविधा और समतल करने के लिए हल चलाते समय उचित ध्यान दिया जाता है।

पौधाशाला की तैयारी : नवम्बर में बोने पर अंकुरण अप्रैल में होता है। आगामी वर्षो में खाली जगहों को भरने के लिए अधिकतम 200 ग्रा0 बीजों की आवश्यकता होती है। प्रति हेक्टेयर में 2 लाख पादपों का अनुरक्षण उचित है। बीज छोटे आकार के होते हैं और रेत में आसानी से मिश्रित हो जाते हैं। 40–50 से0मी0 की दूरी पर हल से रेखायें बनाई जाती है। हल रेखा में 1.5 –2 इंच गहराई पर मृदा में मिश्रित बीज रखने चाहिए। बीजों को तुरन्त मृदा की पतली परत से ढक देना चाहिए।

प्रतिरोपण : ब्यूनियम पर्सीकम को पूरी धूप में उगाना चाहिए। आंशिक छाया में सुखाने पर इसकी वृद्धि बाधित हो जाती है जो बाद में पूरी हो जाती है किन्तु उत्पाद कम होता है। प्रहस्तन योग्य हो जाने पर पौधों को उखाड़ कर बर्तनों में पहले सर्दी के मौसम में ग्रीनहाउस में रखा जाता है। इन्हें बसंत के बाद या गर्मी से पहले खेत में प्रति रोपित करना चाहिए जब पाले का खतरा न हो। पहले वर्ष पादपों की वृद्धि करीब 20–30 से0मी0 और दूसरे वर्ष 60–80 से0मी0 होती है। पादपों के बीच 8–10 इंच की दूरी रखनी चाहिए। सैद्धान्तिक रूप से कतारों में 10–15 से0मी0 और पादपों में 15 से0मी0 की दूरी उपयुक्ततम होती है लेकिन अधिकतम उत्पाद प्राप्त करने के लिए कतारों और एकलों में 45–50 से0मी0 की दूरी होनी चाहिए।

वानस्पतिक विस्तार : यह प्रजाति कंदों से भी विस्तारित की जा सकती है। एक–दो वर्ष का कंद अधिकतम एक या दो पादप उत्पन्न करता है जबकि तीसरे वर्ष का कंद 4–5 कलियां विकसित करता है। उत्तम अंकुरण और पुष्पन के लिए प्रकंदों को लम्बे अन्तराल तक ठंड मे रखा जाना चाहिए। पहली बोआई के लिए 1 से 1.5 कि0ग्रा0 बीज चाहिए जबकि आगामी वर्षो में 200 ग्रा0 हे0 बीज पादप आबादी के अनुरक्षण हेतु उपयुक्ततम होते हैं।

जल प्रबंधन : बीज बोआई के तुरंत बाद स्प्रिंकल से पहली सिंचाई करनी चाहिए। ब्यूनियम पर्सीकम के लिए बहुत अधिक पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अच्छी फसल के लिए 2–5 सिंचाई पर्याप्त होती है। मृदा मे नमी लाने के लिए निराई से पहले सिंचाई करनी उपयुक्त होती है जिसके निराई करना भी आसान हो जाता है। सिंचाई के लिए अन्य उपयुक्त समय तब होते हैं जब पुष्पन और फलन अपने चरम पर होते हैं।

सइनोपोडोफाइलम हेक्जांड्रम रॉयल

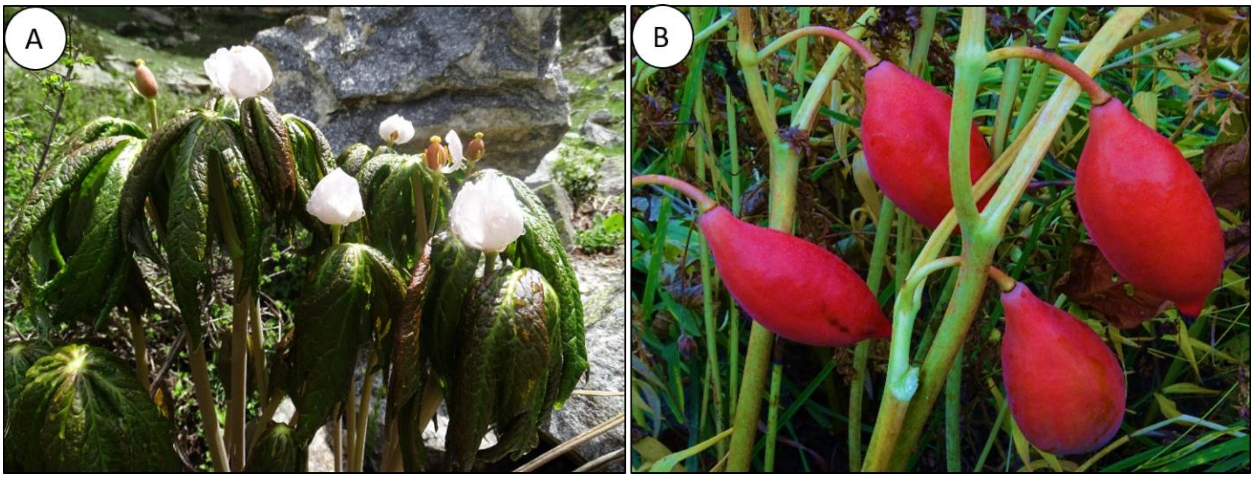

सइनोपोडोफाइलम हेक्जांड्रम रॉयल **ए**–पुष्पन के समय पादप **बी**–फल *अमित कुमार*

प्रजाति तथा लोकेशन प्रोफाईल

देशी नाम : बन ककड़ी

व्यावासायिक नाम : बन ककड़ी

सामान्य नाम : बन ककड़ी (पजांब), वेनीवल (गुजरात), पतबेल (महाराष्ट्र), पाप्रा, पाप्री

आयुवेदिक नाम : वन्य करकटी, गिरपार पाता

संस्कृत नाम : वन वृन्तिका

अंग्रेजी नाम : भारतीय पोडोफाइलम

वासस्थल एवं वितरण

वासस्थल

साइनोपोडोफाइलम हेक्जांड्रम औसत माध्य समुद्र स्तर से 2400–4200 एन की ऊँचाई पर तुंगीय तथा उपतुंगीय हिमालय में फैला हुआ है (राजेश आदि 2014)। यह प्रजाति बड़े वृक्षों के नीचे अच्छी तरह फूलती फलती है और साथ ही बर्फीले नद क्षेत्रों, चट्टानी नम क्षेत्रों, तुंगीय शुष्क झड़ियों, खुले घास ढालानों, तुंगीय ढालानों, छायादार नम तुंगीय ढालानों में तथा वनों की सीमाओं में भी खूब उगती है (शर्मा तथा शर्मा 2018; पाण्डे आदि 2007)।

वैश्विक वितरण

वैश्विक रूप से यह पूर्वी उत्तर अमेरिका तथा उपमहाद्वीपीय की पूर्वी एशिया तक फैला हुआ है। यह मुख्यतः चीन, यूनान, हिमालय, यूएसए, भूटान, इन्डोचायना, भारत में वितरित है। भारत में यह हिमालयी राज्यों जैसे जम्मू–कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और सिक्किम में फैला हुआ है। जम्मू–कश्मीर में यह डेटबस वन गिलगित गुलमर्ग कुन्डी और शिकार के बीच जगरात नदी के किनारों, किशनगंगाघाटी कंसर, झेलम घाटी, खेलानमार्ग लिडवास, मुजफराबाद, वन परिधियों, सिंध घाटी, टनमार्ग फारेस्ट,

जस्कर—मेकी गांव, जोजीला दर्रा, टुम्बा, डगोम, चन्दनवदी, शेषनाग, कारगिल, पिस्सूघाईल पहलगाम, तन्मार्गा में पाया जाता है। उत्तराखंड में इसे देवबन, कंजामा, कोनेन, रदगेरिया गढ़, भीलगाना, पानवाली, जमनोत्री, जमुना चाठी, बडकोट, गौमुख, केदरा कांठा, दसोली, मुण्डाली, म्यान्दर, हेमकुण्ड, मध्य महेश्वर, तंगनाथ, पिंडारी हिमनद, कुटी, यांग्टी नदी घाटी, बोगूदियार (पिथौरागढ़) में रिपोर्ट की गई है। सिक्किम में इसे छामनाग, थांगू, त्सोम्यो, चनगा, ठांगू में रिपोर्ट किया गया है (शाह 2006)। हिमाचल प्रदेश में इसे चम्बा, चुलकोट वन, पांगी, किलार, सेचपास, पल्गा, हरनघाटी दर्स, पांडराबिस, काला टोपी वन, केलांग, कुल्लू, लाहौल, पल्गा, कांगड़ा, मतियान, शैली पहड़ियों, नारकुंडा, डेन्को सिस्सू, कोकसर डलहौजी तथा शिमला में रिपोर्ट किया गया है (शर्मा तथा शर्मा 2018)।

आकृति विज्ञान एवं ऋतुजैविकी

वर्गीकरण वितरण

एस. हेक्जांड्रम खड़ी और अरोमिल जड़ी है जो 30 से0मी0 लम्बी होती है और जिस पर गांठदार प्रकंद होते हैं। तने एक या दो सिरा पर्णविहीन होता है। पत्तियां एकांतर पर हस्ताकार होती है जिनका व्यास 25 से0मी0 तक होता है। ये 3 से 5 के पिंडक में दंतीली और बैंगानी धब्बों से युक्त होती हैं। फूलों का रंग सफेद से गुलाबी तक होता है जो डंठल के दोनों ओर 4 से0मी0 तक होते हैं। तने के द्विभाग में संख्या में तीन और पंखुड़ीदार होते है। पुंकेसर प्रायः छः होते हैं जो पकने पर लोहित हो जाते हैं।

पुष्पन और फलन : मई—जून तथा जुलाई—अगस्त

आबादी स्थिति

एस हेक्जांड्रम के लिए नम पांसी मृदायें उपयुक्त होती है जिनमें छाया रहती है या प्रकाश छनकर आता है। ये नम और खुली काष्ठ भूमियों में उगती हैं (फिलिप्स तथा फोय 1990; नाईट 1980)। निरंतर दोहन और वासस्थल विनाश के कारण कुछ प्रजातियां दुर्लभ हो गई हैं। यह कठोरतासह पादप है जो 20 सेलसियस तक फल—फूल सकता है। इसे स्थापित होने में कुछ वर्ष लग जाते हैं लेकिन उपयुक्त वासस्थल मिल जाने पर यह अत्यन्त लम्बे समय तक रहता है (फैकिओला 1990)। बाद में पाला पड़ने पर युवा पत्तियों को नुकसान हो सकता है अन्यथाः यह पादप अत्यन्त कठोरतासह है। युवा पादप में प्रतिवर्ष एक पत्ती आती है जबकि अधिक आयु के पादप में प्रतिवर्ष 2—3 पत्तियां आ सकती हैं (कौल 1997)। भारत में सीआईटीईएस के तहत जंगलों से इसका निर्यात करना प्रतिबधित है। संबंर्धित पादपों से कुछ सामग्री का निर्यात अनुज्ञापत्र और विधिक प्रापण प्रमाणपत्र या प्राधिकृत प्राधिकारियों से संवर्धन प्रमाणमपत्र प्राप्त करना आवश्यक होता है। भारतीय हिमालय में 113 टक्सा को संकटापन्न के रूप में चिन्हित किया गया है जिनमें से कुछ प्रजातियों जैसे साइनोपोडोफाइलम हेक्जांड्रम का पश्चिमी हिमालय में अध्ययन किया गया है (चौरसिया आदि 2012)। एस हेक्जांड्रम का आबादी घनत्व अवस्थिति तथा ऊँचाई के आधार पर तय होता है जो फूलों की घाटी राष्ट्रीय पार्क में 0.98±0.24, केदारनाथ वन्यजीव अभ्यारण में 0.72±0.30 और पिनघाटी राष्ट्रीय पार्क में 2.0±1.0 रिपोर्ट किया गया है (काला 2005)।

संरक्षण स्थिति

इसे संकटापन्न के रूप में श्रेणीबद्ध किया गया है (चौरसिया आदि 2012; गोराया आदि 2003, काला 2000)। अत्यन्त संकटापन्न (गोराय और वेद 2017)।

संभावित खतरे

पिछली कुछ दशाब्दियों से इसकी जड़ों का व्यापक निष्कर्षण किया गया है। विनाशक फस्लीकरण और वासस्थल निम्नीकरण के कारण यह प्रजाति खतरे में है। गहन संग्रहण, संवर्धन के अभाव और अपने जीवविज्ञानीय अभिलक्षणों के अभाव में धीरे धीरे उगने वाली प्रजातियां दुर्लभ होती जा रही हैं (ग्यूराम आदि 2012)। इस प्रकार इसके आबादी घनत्व में बहुत कमी आई है और इसे संकटापन्न की श्रेणी से सूचीबद्ध किया गया है। पर्याप्त वैविध्य की कमी वाली प्रजातियां बदलते पर्यावरण के अनुरूप नहीं ढल पाती है या परजीवों का मुकाबला नहीं कर पाती है। इसके महत्व को देखते हुये इसे खतरों से बचाना है और जड़ीय स्टॉक की निरंतर आपूर्ति करनी है। केवल इसके स्टॉक का बहुगुणन ही नहीं करना है वरन सुनियोजित संवर्धन से विभिन्न कृषि जलवायुवीय क्षेत्रों और आकृति किस्मों में इसके आबादीकरण को भी बढ़ाना है (शर्मा और शर्मा 2018; चौरसिया आदि 2012)।

औषधीय उपयोग

इसके फल तथा सांद्रित द्रब औषधीयों के रूप में अत्यंत उपयोगी होते हैं। इसके प्रकंदों का उपयोग टॉयफाईड, बुखार, पीलिया, अतिसार, जीर्ण हेपाटाईटिस, स्कोफुला, रेमुटिज्म, त्वचीय रोगों, ट्यूमर वृद्धि, किडनी, ब्लाडर की समस्या, गोनोरोहिया और सिफलिस में किया जाता है।। साइनोपोडोफाइलम का उपयोग योपिर मस्सों की चिकित्सा में किया जाता है। पोडोफाइलोटॉक्सीन की दो व्युत्पतियां जिन्हें इलोपोसाईड तथा टेनीफेसाईड कहते हैं, को कैन्सर के उपचार में प्रयुक्त किया जाता है। इसकी जड़ों से बने लेप को घावों और अल्सर में लगाया जाता है (शर्मा और शर्मा 2018; चौरसिया आदि 2012)।

बाजार एवं व्यापार

भारत में वनों से एकत्रित साइनोपोडोफाइलम प्रजाति का निर्यात करना प्रतिबंधित है। संबंधित सामग्री से प्राप्त कच्ची सामग्री का निर्यात किया जा सकता है। साइनोपोडोफाइलम हेक्जांड्रम का वार्षिक व्यापार घरेलू जड़ी उद्योग और शहरी घर –गृहस्थों में 0.10 एमटी था जबकि कच्ची दवाओं का वार्षिक व्यापार 10–50 एमटी था (गोराया तथा वेद 2017)।

अच्छी पैदावार एवं एकत्रण पद्धतियां

स्थानीय समुदायों द्वारा वनों से बड़ी संख्या में एक हेक्जांड्रम का संग्रह किया जाता है जिसके कारण अन्य अंगों की तुलना में इसकी आबादी में कमी आई हैं क्योंकि (क) प्रकंदों को एकत्र करने के लिए पूरे भूखंड को जोत दिया जाता है (ख) जागरूकता की कमी के कारण स्थानीय समुदायों द्वारा घास और अन्य झाड़ियों को काट दिया जाता है। इन कारणों से इन पादपों की आबादी में कमी आई है। दूसरा कारण पर्यावरणीय स्थितियों में परिवर्तन है जो निरंतर जारी है। इसके अलावा कुछ पादपों की वासस्थल विशिष्टतायें हैं, कुछ के संकुचित वितरण की परिधियां हैं, मानवों द्वारा भूमि उपयोजन में गड़बड़ियां है, गैर देशज पादप प्रजातियों या आक्रामक प्रजातियों को स्थापित करने से उत्पन्न समस्यायें हैं। वासस्थल परिवर्तन जलवायु परिवर्तन, चराई का भारी दबाव, मानव आबादी में बेतहासा वृद्धि, पादप घनत्व का विखंडन और निम्नीकरण, आबादी प्रतिबंध तथा आनुवंशीय संवहन जैसे कुछ संभावित कारक है जिनकी वजह से औषधीय पादपों का विनाश हो रहा है।

फस्लीकरण

निरंतर फस्लीकरण संरचना को देखते हुये निम्नलिखित उत्तम फसल पद्धातियों को अपनाने की सलाह दी जाती है।

क्या एकत्र करना है : प्रकंद, फल और बनककड़ी का पूरा फल एकत्र करना है। अनावश्यक खुदाई और अन्य पादपों को नुकसान से बचाने के लिए वन ककड़ी की उचित पहचान आवश्यक है।

किस स्थिति में : जड़ों और प्रकंदों को मध्य सितम्बर में एकत्र किया जाता है जब प्रकंद पूर्ण परिपक्व हो जाते हैं या ऊपरी भाग सूखने लगते हैं और शुष्क हो जाते हैं।

कब : एस हेक्जांड्रस का संग्रह जुलाई से सितम्बर तक किया जाता है। पादप को पूर्ण परिपक्व होने पर संग्रहित किया जाना चाहिए। सर्वोत्तम संग्रह समय तब होता है जब ऊपरी भाग सूखने लगते हैं और अधिकतम उत्पाद देने के लिए प्रकंद सक्षम हो जाते हैं।

कैसे : खुदाई के लिए उचित उपकरण होने चाहिए जिनसे कम से कम खुदाई करनी पड़े और प्रकंद निकालने में साथ के जुड़े पादपों को नुकसान न पहुंचे। सलाह दी जाती है कि स्थल में प्रकंद के ऊपरी भाग को खोदे हुये स्थान पर गाढ़ा जाया ताकि पुनर्जनन हो सके।

कितना : प्रकंद कर्तन का 1.0–2.5 से0मी0 लम्बा ऊपरी भाग के उत्तम अंकुरण के लिए साइनोपोडोफाइलम को जून–जुलाई में अच्छी तरह से तैयार की गई मृदा मे 30–30 से0मी0 की दूरी पर रोपित करना चाहिए (नौटियाल तथा नौटियाल 2004)।

फसल एकत्रण के बाद प्रहस्तन

धरातल से ऊपरी भागों को सुखाकर जड़ों और प्रकंदों को एकत्र किया जाता है। प्रकंदों को खोदकर निकालने के बाद पानी में धोया जाता है। जड़ों और प्रकंदों को 15–20 से0मी0 लम्बे टुक्डों में काटा जाता है और धूप में सुखाया जाता है। सुखाई गई सामग्री को साफ कंर्टनरों या गनी बैग्ज में ठन्डे और शुष्क स्थान में रखना चाहिए।

संवर्धन और प्रसारण तकनीकें

एस हेक्जांड्रम अच्छी कार्बनिक काली मृदा में पर्याप्त नमी में उगती है। आंशिक छायादार स्थल भी जीवन क्षमता के उपर्युक्त होते हैं और कम ऊँचाई वाले स्थलों में इसे उगाने में सहायक होते हैं। इसे बीजों और प्रकंदों के टुकड़ों से उगाया जा सकता है (नौटियाल और नौटियाल 2004; क्वेजी आदि 2011; श्रीनीवासुलू आदि 2009)। प्राकृतिक स्थितियों में बीजों का कम और कमजोर अंकुरण होता है। एक दो वर्षो तक सुप्तावस्था में रहने के बाद बीजों में अंकुरण होता है। फसल के बाद ठीक से रखरखाव न करने के कारण अंकुरण कमजोर होता है (नौटियाल आदि 1987)। पानी से धोये गये बीजों में न धोये गये बीजों की अपेक्षा उत्तम अंकुरण होता है (भदूला आदि 1996)। भूमि की पूर्व तैयारी के दौरान 10 टन/हे0 खाद की आवश्यकता होती है और भूमि को चार सप्ताह के अन्तराल पर जोता जाता है। बोने के लिए 7–8 कि0ग्रा0 बीज की आवश्यकता होती है। बोआई मार्च–मई में की जानी चाहिए (शर्मा और शर्मा 2018; चौरसिया आदि 2012)।

र्यूभार्व *(र्यूम प्रजाति)*

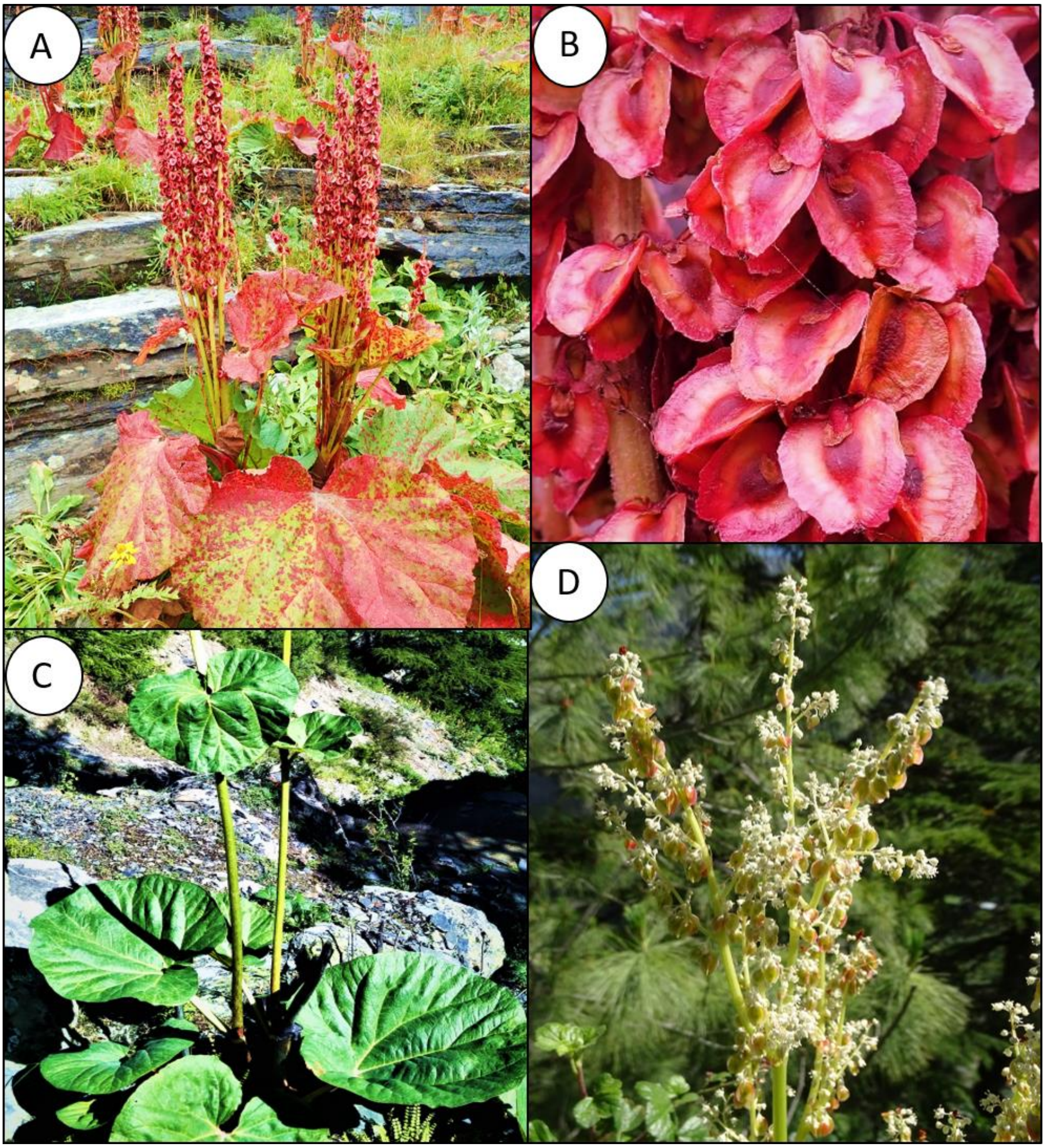

र्यूम प्रजातियां **(ए.बी.)** *र्यूम आस्ट्रेल* का पूरा पौधा तथा बीज **(सी.डी)** *र्यूम वेबियानम* का पूरा पौधा और फूल । 📷 *अमित कुमार*

प्रजाति तथा अवस्थिति प्रोफाईल

ब्यूत्पति : *र्यूम* पॉलीगोनासाई **(बकहवीट कुल)** का सदस्य है। *र्यूम,* जड़ों और प्रकंदों का ग्रीक नाम है जो ईरान से आया है। र्‍बार्ब ग्रीक शब्द 'रा' (नदी) और लेटिन शब्द 'बार्ब' (बार्बेरियन भूमि) से आया है। पुराने समय में रोमनों द्वारा बार्वेरियन भूमियों से रूबार्ब के जड़ें आयात की जाती थी जो वोल्गा या रा नदी के पार होती थी। रा के उस पार बरबेरियन के लिए महत्वपूर्ण यह पादप राबारबेरम के नाम से जाना

जाने लगा। लिंडले बाटनी टे्जरी के अनुसार, यह शब्द ग्रीक र्‌यू (बहूना) से लिया गया है जो जड़ों के शोधक गुणों के अनुरूप है।

देशी नाम : हिमालयन र्‌यूबार्ब, डोलू, रिर्वन्डचिनी आर्क, आर्क लाच्चू

व्यापरिक नाम : रावाल चीनी, रेवना चीनी, रेवौ चीनी, रेवांच्ची, रेवान्ड चीनी

यूनानी नाम : रिवान्ड चीनी

आयुर्वेदिक नाम : अम्लापार्नी, पीटमूला

संस्कृत नाम : रिवांड चीनी, रिवात चीनी, आम्ला पर्न्ति, अम्लावतीसा, गांधीनी, पील, पिटामुला, पिटाभूमिका, रिवाटिका तथा सोमा।

वासस्थल तथा वितरण

वासस्थल :

रिवान्ड चीनी का पादप 3000 और 5500 एमएएसएन की ऊंचाई के बीच हिमालय में कश्मीर से सिक्किम तक और शीतोष्ण क्षेत्रों में सीमित है (टाबिन 2016)। यह मुख्यतः तुंगीय क्षेत्रों में चट्टानी मृदा, मोरेन्स तथा दरारों, शिलाओं के बीच, कुछ विशेष स्थलों में, खुले ढालनों, चट्टानों और झाड़ियों के बीच पाया जाता है (संकारा आदि 2000)। यह प्रजाति हर्माफोरोडाईट (नर और मादा दोनों आर्गन युक्त) है और वायु परामित प्रजाति है। यह नम तथा निकासी युक्त मृदा में खूब फलती फुलती है। इसके लिए मध्यम कले और भारी दुमट्ट ठीक रहती है जिसमें छाया भी हो, (पांडित आदि 2018)।

वैश्विक वितरण :

वैश्विक रूप से यह प्रजाति भूटान, चीन, भारत, म्यांमार, नेपाल और पकिस्तान में वितरित है। यह मुख्यतः हिमालयी राज्यों अर्थात हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और जम्मू–कश्मीर में पाई जाती है (टाबिन 2016)। हिमाचल प्रदेश में इस रोहतांग दर्रा, रहाली फाल, लाहौल घाटी, सांग्ला घाटी, रूपा घाटी, किन्नौर तथा पांगी में रिपोर्ट की गई है। (राना आदि 2014)। वर्मा और तिवारी 2016; पंडित आदि 2018; सिंह आदि 2009, वर्मा और कपूर 2010)। सिक्किम में यह प्रजाति खांगचेंगडोंग जैवमण्डल रिजर्व में पाई जाती है, जबकि उत्तराखंड में इसे गढ़वाल फूलों की घाटी, केदारनाथ, क्यारकोटी, जिला चमोली और जम्मू–कश्मीर में रूबार्क में सैंथल, कश्मीर लेह तथा जनस्कर घाटी में रिपोर्ट किया गया है। (सिंह तथा सुन्द्रियाल 2005; तयादे आदि 2012 तथा रावत आदि 2016)। विश्व में र्‌यूनम वंश की 60 से अधिक प्रजातियां रिपोर्ट की गई हैं (घोरवानी तथा होस्सीनी 2019)। जबकि भारतीय उपमहाद्वीप में 7 प्रजातियां की गई है (गानी आदि 2014)।

आकृति विज्ञान एवं ऋतुजैविकी

र्‌यूम बारहमासी जड़ी है जो 1.5 से तीन मीटर लम्बी होती है। इसकी जडें मजबूत और मोटी होती हैं। पत्तियां, आल्यांतिक वृत्ताकार या अण्डाकार होती है। यह काफी बड़ा पादप है। इसका व्यास लम्बे पर्णवृन्तों सहित 30–45 से0मी0 होता है। पुष्पीय अभिलक्षण : एकान्तक पर्णवृन्तों में पुष्प छोटे घने बैंगनी या फीके लाल होते हैं। पादप तीन से पांच वर्षो तक वाल्यवस्था में रहते हैं जिसके बाद पुनरूत्पादक फेज आता हैं।

पुष्पन और फलन : पुष्पन जून से अगस्त और फल जुलाई से सितम्बर।

आबादी स्थिति

वासस्थलों के अनुसार इसका घनत्व बदलता रहता है जैसे हिमाचल प्रदेश में इसका घनत्व 0.5 से 5.3 एकल वर्ग मीटर रिपोर्ट किया गया है (उनियाल आदि 2005; सिंह आदि 2005)। इसी प्रकार उत्तराखंड में इसके घनत्व में 1.93 – 4.24 एकल मीटर का वैविध्य होता है (रावत आदि 2016)।

संरक्षण स्थिति

र्‍यूम आस्ट्राली 'संवेदनशील' श्रेणी में आता है (गोराया आदि 2013)। किन्तु पूर्व स्थिति के अनुसार (वेद आदि 2003) संकटापन्न की श्रेणी में आता है। *र्‍यूम वेबियानम* को संवेदनशील' के रूप में आकलित किया गया है (गोराया आदि 2013)।

संभावित खतरे

इस प्रजाति पर कई खतरे हैं, जैसे घेरलू उपयोग के लिए अतिदोहन, अतिचाराई, वासस्थल निम्नीकरण, त्वरित शहरीकरण, चयनित अवैध निष्कर्षण तथा अनियंत्रित निर्वनीकरण (पंडित आदि 2018)। इनके अलावा सड़के बनाने, पर्यटकों की भारी संख्या, जो स्वास्थ्य क्षमता से अधिक हो जाती है, औद्योगिकीकरण, भूमि अपरदन आदि ऐसे कारक हैं जिनसे यह प्रजाति संकुलित होती जा रही है। (रशीद आदि 2014; बेग आदि 2014)।

औषधीय उपयोग

इस प्रजाति में कई औषधीय गुण है, जैसे वृद्धावस्था में उपयोगी, पेट दर्द में उपयोगी है। यह कब्ज विरेचक, ज्वरनाशी, टॉक्सीनरोधी, विषाक्ततारोधी, कृमिरोधी, सारकरोधी, मूत्रवर्धक, रोघक, स्ट्रोलामिकरोधी, ट्यूमररोधी है। इसका उपयोग अस्थमा, पीठ दर्द, पित्त अनियत्रिता/पित्त, बुखार, सख्तपेट, शरीर की अकड़न, फोड़े, जीर्णखांसी, जलन, ठंड, अतिसर, पाले से जलना हेमाटोकिया, अल्सर कैन्सर आदि में टॉनिक के रूप में किया जाता है (रोकाया आदि 2012, जरगार आदि 2011, रावत आदि 2016)। *आर वेब्वेनियम* की जड़ों का उपयोग रंगसाजी में किया जाता है। यह हल्का गुलाबी रंग देता है। इसे ऊनी तथा रेशम के तुंतओं में काम के लाया जाता है (तयादे आदि 2012)। जड़ों का चूर्ण बनाकर अल्सर के घावों को भरने में किया जाता है तथा इससे दातों की सफाई भी की जाती है। इसकी पत्तियां और पुष्प भोज्य होते हैं (नोटियाल आदि 2003), बाजार एवं व्यापार र्‍यूम वेब्वेनियम का वार्षिक व्यापार 10 एमटी से कम आकलित किया गया और कच्चे र्‍यूम अस्टेला की खपत घेरलू जड़ी उद्योग तथा ग्रामीण घर–गृहस्थी में 100–200 एमटी आकलित की गई (गोराया आदि 2017)।

उत्तम संवर्धन तथा एकत्रण पद्धतियां

एकत्रण

सतत् फस्लीकरण संरचना को देखते हुये निम्नलिखित उत्तम एकत्रण पद्धतियों की अपनाने की सलाह दी जाती है।

एकत्र क्या करना है : र्‍यूम के प्रकंदों और जड़ों को एकत्र किया जाता है।

किस अवस्था में : बीज से उगाने पर निम्न ऊँचाईयों में यह पादप चौथे वर्ष परिपक्व हो जाते हैं जबकि अधिक ऊंचाई वाले भागों में परिपक्व होने में अधिक समय लेते हैं।

कब : कम ऊँचाईयों वाले भागों में सितम्बर में तथा अधिक ऊँचाई वाले भागों में अक्टूबर में फस्लीकरण करना चाहिए। यदि बड़ी मात्रा वाले जैव सक्रिय रासायनिक मिश्रणों में आवश्यक हो तो परिदृश्य से पूर्व भी एकत्रण किया जा सकता है जिससे पादप के जैवसक्रिय घटकों को अधिकतम मात्रा में प्राप्त किया जा सके। इन परिस्थितियों में फस्लीकरण निम्न भागों के जुलाई से अगस्त तथा उच्च भागों में अक्टूबर में किया जा सकता है।

कैसे : खुदाई के लिए उपयुक्त उपकरणों का प्रयोग करना चाहिये ताकि कम से कम खुदाई करनी पड़े और आसपास के पादपों को नुकसान न हो।

फस्लोपरांत प्रहस्तन

मृदा अवययों को हटाने के लिए प्रकंदों को पूरी तरह साफ कर धोना चाहिए। इसके बाद 3–4 टुकड़ों में काटकर आंशिक छाया या गरम हवा में सुखाना चाहिए। शुाष्कित सामग्री को गन्नी बैग्ज में पैककर बाजार भेजने या शीतगृहों में भण्डारित करने हेतु तैयार करना चाहिए (नौटियाल तथा नौटियाल 2004)।

संवर्धन और प्रसारण

बीजों और प्रकंदों दोनों से प्रसार किया जा सकता है। रेतीली और रंध्रमय मृदा में पूर्णत अपघटित खाद मिलानी चाहिए जबकि उच्च नमी की धूप वाली जगहों में पादप उत्पाद सुरक्षित रहता है। पहले भूमि को जोता जाता है और खेत को तैयार किया जाता है फिर फार्म की वाली मृदा के साथ मिलाकर आधारिक रूप से 2200 मीटर तैयार किया जाता है। कम तुंगता (1800 एम) में खाद की अधिक मात्रा (करीब 150–200 क्वेंटल/हेक्टेयर) प्रभावशाली रहती है 250–300 प्रतिपादप होता है। एक हेक्टेयर भूमि में 60–70% पौध जीविविधता के लिए 50X50 से0मी0 पर बीजों को वसन्त मौसम (मार्च–अप्रैल के प्रारंभ) बीजों को विशिष्ट पूर्व उपचार की आवश्यकता नहीं होती है। प्रतिरोपण मई के महीने करना चाहिए जब पादप करीब तीन महीने के हो जाते हैं, जिन्हें 50X50 से0मी0 की उपयुक्तम दूरी पर उगाया गया हो, आधारिक उपचार के रूप में प्रतिरोपण से पूर्व नाइट्रोजन की आधी डोज और फास्फोरस और पोटाश की पूरी डोज प्रयुक्त की जाती है। प्रतिरोपण के छः से आठ सप्ताह के बाद नाइट्रोजन की बाकी डोज दी जाती है। प्रतिरोपण के तुरन्त बाद सिंचाई करनी चाहिए और उसके बाद चार सप्ताह के अन्तराल पर हल्की सिंचाई करनी चाहिए। फसलवृद्धि के लिए गर्मियों में स्प्रिंकल से सिंचाई करने पर अधिक उत्पाद प्राप्त होता है। किन्तु अधिक सिंचाई करने पर जमीन में दवे प्रकंदों को सर्दियों में नुकसान हो सकता है। स्थापना फेज, वृद्धि फेज तथा मानसून फेज में 15–30 दिनों के अन्तराल पर निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। फ्यूसेरियम संक्रमण से बचने के लिए मृदा को कार्बन्डाजिम 50 से 2 ग्रा0/लीटर से तर करना चाहिए (अज्ञात 2020, कलसांग 2016, नौटियाल और नौटियाल 2004)।

फ्रीटीलेरिया साइरोसा डी.डॉन

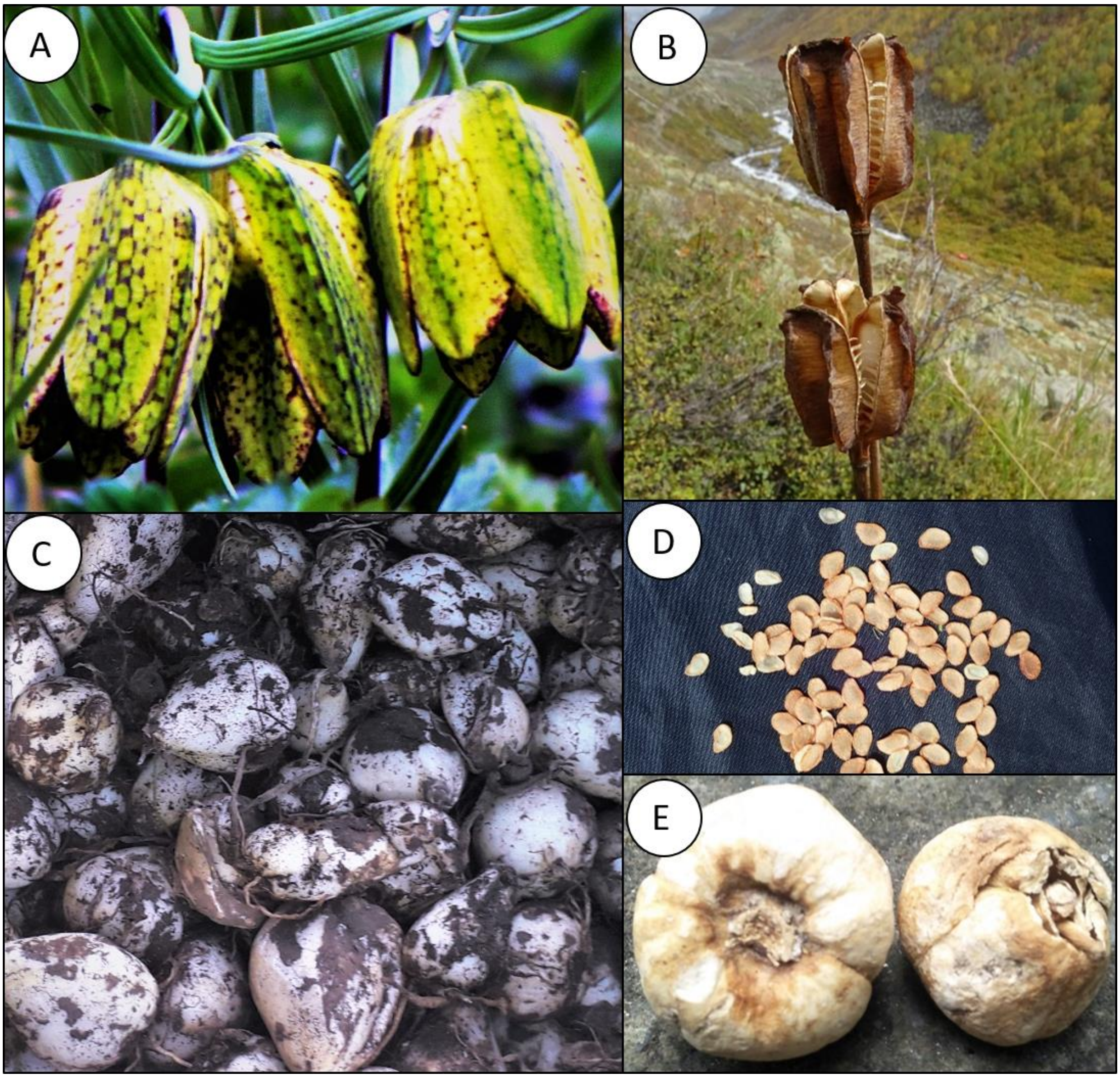

फ्रीटीलोरिया साइरोसा **ए**–पुष्प, **बी**–फोलीक्ल, **सी**–अपरिक्वोकंदा, **डी**–बीज, **ई**–परिपक्व प्रकंद 📷 **ए**–गजेन्द्र रावत, **बीडीई**–अमित कुमार, **सी**– हिमांशु बरगली

प्रजाति एवं अवस्थिति प्रोफाईल

व्युत्पति : इसे काकोली भी कहा जाता है। यह प्रजाति पॉलीहर्बल से सूत्रबद्ध आठ जड़िया (अष्ठवर्ग) में महत्वपूर्ण घटक है। *फ्रीटीलेरिया साइरेसा,* सामान्य नाम गुलाबी हिमालयी फ्रीटीलरी, लिली कुल की एशियाई जड़ी प्रजाति है। इसे गुलाबी हिमालयी फ्रीटीलरी भी कहा जाता है। फ्रीटीलरी नाम लेटिन शब्द फीटीलस से आया है जिसका अर्थ है डायस बाक्स, जो फूलों के चिन्हांकन से संबंधित है।

देशी नाम : हिंदी : ककोली, तमिल : ककोली, मलायलम : ककोली, तेलगू : ककोली, कन्नढ़ : ककोली,

संस्कृत : ककोली, क्सिराकेली, क्सिसुकला, पयास्या, भूटिया : चिकओर, नेपाल : ककोली

व्यावसायिक नाम : जंगली लहसुन, बन लहसुन

आयुर्वेदिक नाम : ककोली

वासस्थल वितरण

वासस्थल

फ्रीटीलिया साइरोसा डी डॉन (लिलासाई) सामान्यतः भारत के उत्तर पश्चिम में तुंगीय ढालानों तथा झाड़ीयुक्त स्थलों में पाया जाता है (प्रकाश और निर्मला आदि 2005)। वह हल्के ढालानों में धूप वाले चारागाहों में उगता है जहाँ आद्रता अधिक होती है (चौहान आदि 2011 ए)। यह 2700–4000 एमएएसएल की ऊंचाई पर उगता है (प्रकाश और निर्मला 2013)। फ्रीटीलेरिया साइरोसा सामान्यत हिमालय के खुले चारागाहों में 3200–4600 एमएएसएल पर उगता है (चेन तथा मोरडाक 2000)। यह जड़ी युक्त पादप तुंगीय और उपतुंगीय क्षेत्रों में शरबेरीज जैसे लोनीसेरा प्रजा0, रोमा प्रजाति तथा सेलिक्स प्रजाति के बीच चट्टानी और घासीले तुंगीय ढालानों में उगता है। इसकी आबादी कुछ स्थलों में पूरे वितरण परिधि में बिखरी हुई है।

वैश्विक वितरण

एफ. साइरोसा संकटापन्न सदाबहार जड़ी है जो मुख्यतः चीन, भारत, नेपाल, म्यांमार, क्विंगाई, पाकिस्तान, भारत, भूटान और म्यांमर में फैली हुई है। इसका वितरण भारत में उत्तराखंड हिमाचल प्रदेश और जम्मू–कश्मीर राज्यों में है। यह प्रजाति उच्च हिमालयी पारिपद्धति में देशज है (चौहान आदि 2011 ए)। यह हिमालय के कश्मीर से कुमांऊ तक पश्चिमी शीतोष्ण भागों में उगती है (खरे 2007) और साथ ही पाकिस्तान से उत्तराखंड में पाई जाती है (प्रकाश और निर्मला 2013)।

आकृति विज्ञान तथा ऋतुजैविकी

वर्गीकरण वितरण

यह खड़ी प्रकंदयुक्त जड़ी है जो 18–76 से0मी0 तक ऊँची होती है। इसके प्रकंद आरोमिल होते हैं, जो रंग में सफेद और अकंचुकित होते हैं। पुष्प मुख्यतः आवधिक गांठयुक्त और रंग में मक्खनी – हरे रंग के होते हैं। इसका फल छः रिजिड कैप्सूल होता है जिसमें बड़ी संख्या में सपाट त्रिकोणीय बीज होता है यह छः लाईनों में बंटा होता है और सुनहरे–भूरे रंग का होता है। गुलाबी हरे, भूरे–बैंगनी और घंटी के आकार के होते हैं। पत्तियां रेखीय होती हैं जिनकी नोक बल्लम की नोक की तरह नुकीली होती है।

पुष्पन और फलन : पुष्पन की अवधि मई –जुलाई है। सामान्यतः फूलों की पंखुड़िया पीली होती है जिनमें बैंगनी रंग के धब्बे होते हैं थे नेक्टेराईन्स विकसित करते हैं। इसके कैप्सूल्स सितम्बर या अक्टूबर में परिपक्व होते हैं जिनमें 80–200 बीज प्रतिकैप्सूल होते है। हजार–बीजों का भार 1.96 ग्रा0 होता है (मैथ्यू 1996)।

आबादी स्थिति

फ्रीटीलेरिया साइरोसा को भारी एकत्रण दबाव, मानवजनित क्रियाकलाप, अन्य संबंद्ध प्रजातियों से प्रतिस्पर्धा और कम बीज स्थापना के कारण खतरा है। पिछले 20–30 वर्षों में 58–77ः कमी रिकार्ड की गई है (चौहान आदि 2011 ए) वणिज्यिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अतिदोहन के कारण यह प्रजाति दबाव में हैं (काला 2000)। इस प्रजाति की बाजार मांग बढ़ रही है जबकि आपूर्ति धीरे–धीरे कम हो रही है (वेद और गोराया 2008)। औषधीय उपयोग के लिए इसका अतिदोहन हो रहा है जिससे प्राकृतिक वासस्थलों के इसकी उपलब्धता कम हो रही है जिसके फलस्वरूप यह प्रजाति संकट पूर्ण स्थिति में आ गई है। इसके संरक्षण और संवर्धन पर अध्ययन करना आवश्यक हो गया है (चौहान 2011)

संरक्षण स्थिति

फ्रीटीलेरिया साइरोसा डी डोन वारहमासी और अत्यन्त संकटापन्न औषधीय जड़ी है (शफी आदि 2018)। यह पश्चिमी हिमालय की वैश्विक महत्व की 36 औषधीय पादपों में से एक है (बिष्ट आदि 2016)।

एफ माइरोसा की आबादी में ह्रास को देखते हुये इसे आईयूसीएन की लालसूची में विचार हेतु रखा गया और उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश तथा जम्मू–कश्मीर में अत्यन्त संकटापन्न की सूची में दर्ज किया गया (वेद आदि 2003; सिंह आदि 2020)। हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर में आकलन के पश्चात इसे व्यापक क्षेत्रीय एमएपी माना गया (वेद आदि 2003, 1998; बिष्ट आदि 2016; गोराया आदि 2013)। इसे संकटापन्न की श्रेणी में इसलिए डाला गया क्योंकि इसकी वनीय आबादी का पुनर्स्थापन अत्यंत आवश्यक हो गया है। इस प्रकार औषधीय रूप से महत्वपूर्ण पादप होने के कारण यह प्रजाति कई तरह के खतरों का सामना कर रही है। इसे स्वस्थानिक तथा परास्थानिक दोनों तरह के संरक्षण में प्राथमिकता मिलनी आवश्यक है (चौहान आदि 2011 ए)।

संभावित खतरे

इसकी सख्त वासस्थल आवश्यकता के कारण प्रदर्शन और संवर्धन अत्यंत कठिन हैं। इसलिए अधिकांश एफ साइरोसा को वनों से एकत्र करना होता है। पिछले दशकों में अति फस्लीकरण, वासस्थल विखंडन और अतिचराई के कारण इसकी वनीय आबादी तेजी से कम हो रही है और विलुप्त होने के कगार पर है (जैंग आदि 2010)। यह प्रजाति, अनियोजित, परिपक्व होने से पहले फस्लीकरण, विनाशक एकत्रण पद्धातियों तथा अवैध बाजार के कारण भी खतरे में है जो इसके विरूद्ध समानान्तर रूप से कार्यरत हैं (मथेला आदि 2020)।

औषधीय उपयोग

इसका उपयोग मुख्यतः ट्यूसिवरोधी 'कफोत्सारक' तथा अतिसंवेदनशील रोधी' के रूप में किया जाता है। इसका कंद कई औषधियों और स्वास्थ्यवर्धक दवाओं का महत्वपूर्ण घटक है (चाहौन आदि 2011 बी)। यह कड़वा टॉनिक है जो गैस्टिक दूर करता है, बुखार ठीक करता है और मूत्र नली संबंधी संक्रमण को दूर करता है। रिपोर्ट किया गया है कि यह 80 बीमारियों की दवा है (मुल्ताल आदि 2013)। इसका उपयोग मूत्रवर्धक, ग्लेक्टेगोग, कफोत्सारक और कामोद्दीपक के रूप में किया जाता है। तराई के प्रकंदों में

ज्वरनारी, ग्लेस्टोगेल, हेमोस्टेटिक, कफउत्सर्जक, कामोदीपक, र्‍यूमेटिक रोधी, सुपरमेटाजानिक और शक्तिवर्धक गुण होते हैं जबकि प्रकंद अत्यन्त प्यास, गठिया का दर्द और सुपरमेटोजानिक में लाभदायी होता है (ध्यानी आदि 2010, बिष्ट आदि 2016)। इस जड़ी के कंद च्यवनप्रास, महात्रिफला धिरीथाम, घुरूथाम और दनवायारण के महत्वपूर्ण घटक हैं। इसे ककोली भी कहा जाता है। यह प्रजाति आठ जड़ियों, अष्ठवर्ग, का महत्वपूर्ण घटक है किन्तु हिमाचल प्रदेश के स्थानीय समुदाय से इस तरह के औषधीय उपयोग की पुष्टि नहीं की गई है। चीन में एफ साइरोसा (चुआन बिगू) का उपयोग परम्परागत चीनी दवा में लम्बे समय से किया जाता रहा है। इससे टीवी, और हेमाटेमसिस का इलाज किया जाता है। गर्भवती महिलाओं द्वारा इसके उपयोग से दर्द कम होता है। इससे ताजगी आती है और विभिन्न प्रकार के दर्दो से छुटकारा मिलता है (ध्यानी आदि 2010)। फ्रीटीलेरिया के कंदों से प्राप्त आल्कोईड्स उत्तम जीवविज्ञानीय क्रियाकलाप प्रदर्शित करते हैं, जलनशांत करते हैं, ट्यूमररोधी होते हैं, ट्यूसिवारोधी होते हैं और इसमें अस्थमारोधी गुण भी होते हैं (वांग आदि 2014)।

बाजार और व्यापार

यह 18 प्रजातियों में से एक है जिसका पूरे विश्व में सक्रिय बाजार है। इसका उद्योग बड़े पैमाने पर है। इसकी मांग चीन में 400 मिलियन यूएस डालॅर प्रतिवर्ष है (लुओ आदि 2018)। भारत के स्थानीय बाजारों में शुष्क कंदों का मूल्य 10,000 से 15,000 कि0ग्रा0 आई एन आर है (कुमार आदि 2021)। भारत में वनों से फ्रीटीलेरिया साइरोसा को वनों से एकत्र करके निर्यात करना प्रतिबंधित है। खेती की गई कच्ची सामग्री का निर्यात किया जा सकता है (गोराया और वेद 2017) के अनुसार एफ साइरोसा का मूल्य ढ एमटी में 1200–6000 कि0ग्रा0 था। एचपीएफडी के अनुसार एफ साइरोसा के निष्कर्षित सामग्री की मात्रा लाहौल और पांगी भू–दृश्य में वर्ष 2017–18 में 108.4 क्वेंटल था।

स्थानीय संग्रहकर्ताओं से *फ्रीटीलेरिया साइरोसा* कंद का संग्रह 📷 हिमांशु बरगली

सितम्बर–अक्टूबर में कंद परिपक्व होने से पूर्व जुलाई में उत्साहपूर्वक अपरिपक्व कंदों का एकत्रण करने से अगले मौसम के लिए कलियां समाप्त हो जाती हैं। उदाहरण के लिए एक स्थानीय द्वारा 60,000/– में 5 कि0ग्रा0 से अधिक मूल्य के प्रकंद एकत्र किये गये। कुमार आदि (2021) के अनुसार एफ साइरोसा का औसत बाजार मूल्य 9666.66±881.92 से 17666.66±1452.97 (रू0कि0± एसडी) बड़े बाजारों अर्थात् उदयपुर (लाहौल, किलार, (पांगी), केलांग, मनाली तथा अमृतसर में है (तालिका 6)।

तालिका 6 : *फ्रीटीलेरिया साइरोसा* का विभिन्न दवा बाजारों में मूल्य

क्र0सं0	बाजार/स्थान	बाजार मूल्य (रु/कि0ग्रा0)	औसत बाजार मूल्य (रु0/कि0ग्रा0) ± एसडी
1.	उदयपुर (लाहौल)	10000	9666.66±881.92
2.	किनार (पांगी)	15000	7666.66±881.92
3.	केलांग (लाहौल)	15000-20000	16000±2000
4.	मनाली	12000-25000	16333.33±3382
5.	अमृतसर	20000	17666.66±1452.97

गोराया तथा वेद (2017) के अनुसार 'बन लहसुन' (फ्रीटीलेरिया साइरोसा) के दाम में 2009–10 तथा 2014–15 में हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, उत्तराखंड में इसके कंदों में अचानक तेजी आई। इस उच्च एकत्रण दबाव के कारण फ्रीटीलेरिया साइरोसा को उच्च वार्षिक एकत्र दबाव झेलना पड़ा जिससे ये प्रजातियां संभावित विलुप्तीकरण के जद में आ गई।

उत्तम फस्लीकरण तथा एकत्रण पद्धतियां

निश्चित वासस्थलो की आवश्यकता को देखते हुये इसके घेरलूकरण तथा खेती की स्थिति को नियत करना अत्यन्त कठिन है। इसलिये रिपोर्ट किया गया है कि ए. साईरोसा को अभी भी वनों से ही एकत्र किया जाता है। अति फस्लीकरण वासस्थल विखंडन तथा अति चराई से पिछली दशाब्दियों में इसकी वनीय आबादी तथा आकार कम होता जा रहा है और इस पर विलुप्त होने का खतरा मंडरा रहा है। (जैंग आदि 2010)। आज की स्थिति में एफ साइरोसा प्रकंदों की बाजार मांग को पूरा करने में खेती की स्थिति कमजोर है। तथापि अन्य फ्रीटीलेरिया की प्रजातियों की खेती बड़े पैमाने पर सफलतापूर्वक की जा रही है (क्यूनिंघम आदि 2018)।

फस्लीकरण

सतत फस्लीकरण संरचना तैयार करने के लिए निम्नलिखित उत्तम फस्लीकरण पद्धतियो को अपनाने की सलाह दी जाती है। उत्तम खेती पद्धतियों का उद्देश्य अधिकतम उत्पाद जिसमें अल्कालोईड का मात्रा सतत आधार पर हो, प्राप्त करना है जिसको लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सके। एफ साइरोसा प्रकंदों के अधिकृत भागों को मृदा से खोदा जाता है जो विनाशक पद्धति है। किन्तु सतत संरचना का पालन करते हुये जंगली लहसुन का उचित तरीके से दोहन किया जा सकता है। पारंपरिक फस्ल पद्धतियों पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि बाजार की बढ़ती हुई मांग को देखते हुये फ्रीटीबेरिया के प्रकंदों की खेती (क) परिपक्व होने से पूर्व (ख) बीजों के पूर्ण परिपक्व होने से पूर्व की जाती है (ग)

गहरी खुदाई करने से अन्य पादपों को नुकसान पहुंचना है (घ) पूरे प्रकंद को उखाड़ा जाता है। (च) फस्लीकृत क्षेत्र को विहित आराम नहीं दिया जाता है। फसलोंपरांत रखरखाव/ प्रहस्तन के कारण एकत्रित उत्पाद नष्ट हो जाते हैं जिससे इसके वनीय स्रोतों पर अधिक दबाव पड़ता है। इसलिए जंगल में एकत्र करने वालों को उत्तम फस्लीकरण और प्रहस्तन के प्रति शिक्षित करना चाहिए।

क्या एकत्र करना है : जंगली लहसुन के मामले में कंद/प्रकंदों की एकत्र करना होता है। अनावश्यक खुदाई और अन्य पादपों को नुकसान से बचाने के लिए पहले इस पादप को ठीक तरह से पहचान लेना चाहिए। यह ध्यान रखा जाय कि केवल परिपक्व कंद ही एकत्र करने हैं।

किस स्थिति में : अगले वृद्धि मौसम के लिए पादप के अंगों को छोड़ना और अपरिपक्व स्थिति में एकत्र करने से रोकना अत्यन्त कठिन है। अपरिपक्व कंदों में चिकित्सीय गुण कम होते हैं। दोहन तभी करना चाहिए जब बीज परिपक्व और वितरण योग्य हो जाये। इस स्थिति में आने के लिए पादप को तीन वृद्धि मौसम लगते हैं।

कब : एकत्रण अवधि अगस्त–सितम्बर के बीच। इसके कैप्सूल सितम्बर या अक्टूबर में परिपक्व होते हैं जिनमें 80–200 बीज होते हैं जिसके 1000 ग्रेन का भार 1.96 ग्रा0 होता है (चेन आदि 1993; मैथ्यू 1996)। इस प्रजाति का पुनर्जनन लैंगिक या अलैंगिक दोनों तरह से हो सकता हैं, लेकिन लैंगिक पुनर्जनन उत्तम रहता हैं (मैथ्यू 1996)।

कैसे : खुदाई के लिए उपयुक्त उपकरण होने चाहिए जिनसे केवल आवश्यक खुदाई की जा सके और साथ के पौधों को नुकसान न पहुंचे। सलाह दी जाती है कि प्रकंद के ऊपर भाग को काटकर खोदे गये भाग में दवा दिया जाय ताकि पुनरूत्पति हो सके।

खेती और प्रसार

बड़े पैमाने पर फ्रीटीलेरिया साइरोसा के सर्वमान्य संरक्षण उपाय नहीं हैं। कुछ स्थानीय लोगों ने अपनी भूमियों में इस पादप का सफल दोहन किया है। लाहौल के श्री लोकचन्द ने इस प्रजाति के एकत्रण का प्रदर्शन किया है। उनका कहना है कि यह प्रजाति रेतीली या दुम्मटी मृदा में उगानी चाहिए। मृदा में उच्च नमी और कम अल्कालाईन होनी चाहिए। बीजों का उपयोग खेती के लिए करना चाहिए जिन्हें पकने के बाद धोना चाहिए। बीज, बसन्त में अंकुरित होते हैं इन्हें अंकुरित होने मे एक वर्ष का समय लगता है। तीन और पांच वर्षो में पुष्पन होता है। एक बार गिर जाने पर उनका वृद्धि मौसम समाप्त हो जाता है। पादप के प्रकंदों के स्थाई भूखंडों में डाल देना चाहिए। फसलों को पूर्ण परिपक्व होने में छः वर्ष लगते हैं। पादपों को पाले से बचाना आवश्यक होता है।

पॉलीगोनेटम वर्टीसिलेटम (एल) ऑल.

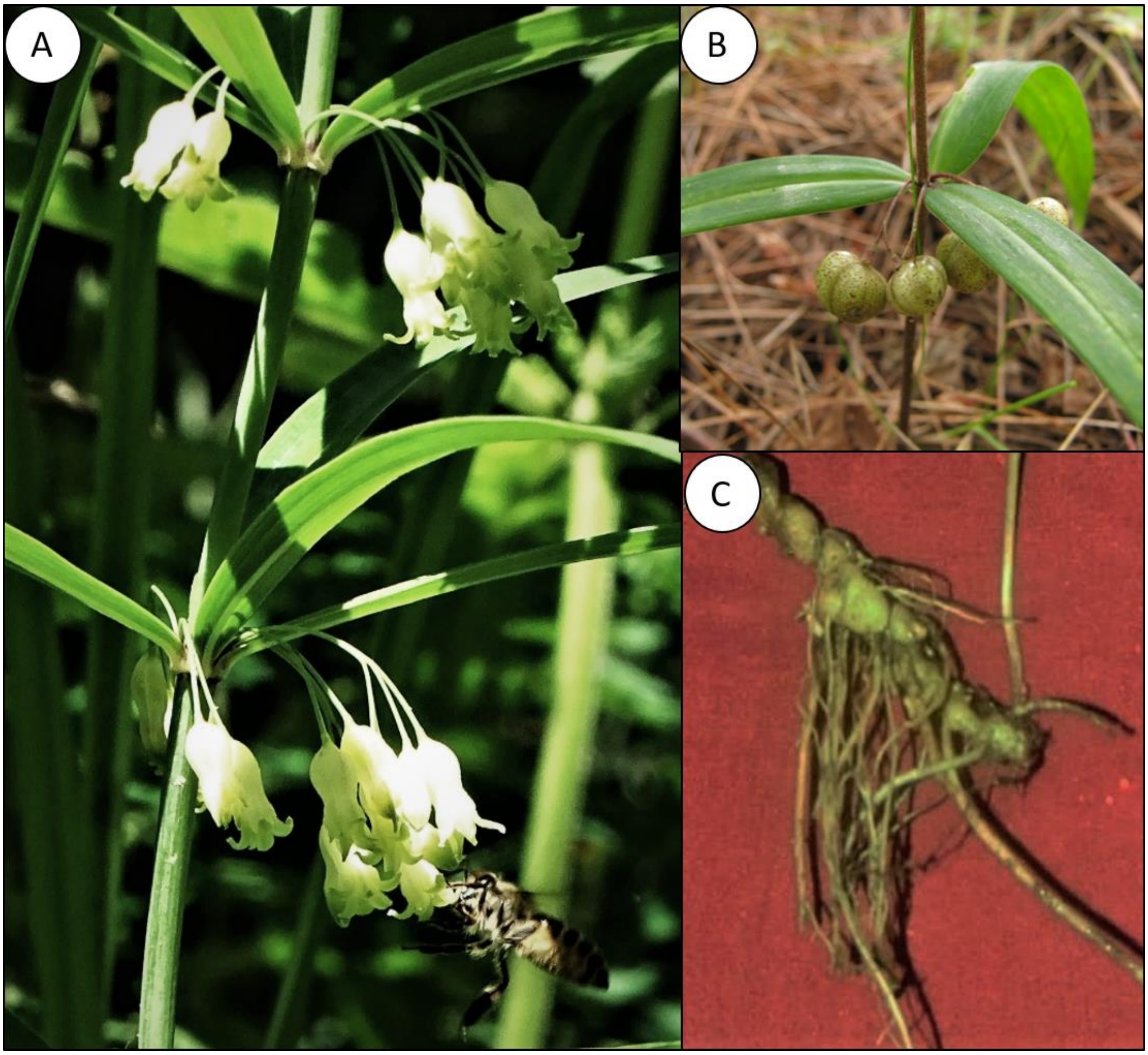

पॉलीगोनेटम वर्टीसिलेटम, **ए**–पुष्प, **बी**–फल, **सी**–प्रकंद अमित कुमार एवं रेनु सुयाल

प्रजाति एवं अवस्थिति प्रोफाईल

ब्युत्पति : *पॉलीगोनेटम वर्टीसिलेटम, कोनावेलरिया वर्टीसाइलाटा* का समानार्थी है जो चिलासाई कुल से संबंधित है। इसकी व्युत्पति का बाइनोमियल नाम *पॉलीगोनेटम* है जिसे ग्रीक शब्द 'पॉली' से लिया गया है जिसका अर्थ होता है कई छोटे जोड़। *वटीसाइलेटम* लेटिन शब्द 'वर्टीसाइटस' से लिया गया है जिसका अर्थ होता है : सामान्तर दिशा। मिलर (1754) के अनुसार पॉलीगोनेटम का जातिगत नाम प्रकंद अभिलक्षणों से लिया गया है जो योवी, ए नी से मिलता क्योंकि इसमें कई नीज (घुटने) होते हैं।

देशी नाम : सलम मिश्री, मीठा दुधिया, कंटूला

व्यावसायिक नाम : सलम मिश्री

उर्दू नाम : नोर–ई–अलम

यूनानी नाम : मीड़ा

अंग्रेजी नाम : होर्टेड सोलोमोन्स सील

हिंदी नाम : बासुचिद्रा, देवामनी, पांडुरा, शकाकुल, सील, वासुचिद्रा माहामेदा

अयुवेद नाम : महामीड़ा, मीडा

संस्कृत नाम : चिदांसी, देवरमनी तथा वासुविद्रा

वासस्थल एवं वितरण

वासस्थल : प्रकंदोंयुक्त, बारहमसी जड़ी जो प्रायः नम, पोषण तत्वों से परिपूर्ण, काष्ठयुक्त घाटियों में आधारिक मृदा, काष्ठीय नदी किनारों, बांज वनों और नम वासस्थलों, वनों की सीमाओं तथा छायादार चट्टानी भागों में पाई जाती है (देवी आदि 2019, सुयाल आदि 2020)। यह पूरी छाया (गहन काष्ठ भूमियों) या आंशिक छाया (हल्की काष्ठ भूमियों) में उगती है।

वैश्विक वितरण : पी वर्टीसाइलेटम का वितरण शीतोष्ण हिमालय (पश्चिमी एशिया और यूरोप) में 2400 से 2800 एमएएसएल पर है (अज्ञात 2008; चौहान 1999)। यूरोप, तुर्की, केंद्रीय तथा मध्य एशिया, पाकिस्तान, अफगानिस्तान तथा तिब्बत में इसका विश्वव्यापी वितरण है। इसे हिमालयी क्षेत्र की अत्यंत महत्वपूर्ण औषधीय जड़ी माना जाता है (ध्यानी आदि 2010)। यह पर्वतीय तुंगीय हिमालय में वितरित है। इसे हिमाचल प्रदेश में मनाली वन्यजीव अभ्यारण और किन्नौर में रिपोर्ट किया गया है जबकि उत्तराखंड में इसे गढ़वाल हिमालय से मुना, दुनागिरी, विन्सर, तुंगनाथ, रूद्रनाथ, फूलों की घाटी, दयारा, नीती और नन्दादेवी राष्ट्रीय पार्क में रिपोर्ट किया गया है (नैथानी 1984)।

आकृति विज्ञान तथा ऋतुजैविकी

वर्गीकरण विवरण :

यह खड़ा और हष्टपुष्ट पादप है जिसमें संकरे और बल्लम की नोकनुमा पत्तियों के कई चक्कर होते हैं। इसकी शाखायें समूहों में 2–3 छोटी निलम्बी, टयूबयुक्त होती हैं और फूलों के कक्ष सफेद होते हैं जिनकी ऊपरी भाग का रंग हरा होता है। इसका तना कोणीय और खांचेदार तथा 60–120 से0मी0 लम्बा होता है। फूल 8–12 एमएम लम्बे होते हैं जो चौड़ी टयूब में छोटे त्रिकोणीय संगलक में फैले होते हैं। इसके परिदलपुंज के 6 भाग होते हैं जो कुछ–कुछ प्रतिबिंबित होते हैं। यह पर्वतीय वनों में नम–छायादार अवस्थितियों में पाया जाता है। इसका फल सरस होता है जो पहले चमकीला लाल होता है और बाद में गहरा बैंगनी हो जाता है। इसकी जड़ी रचना मोटी और बिसर्पी होती है।

पुष्पन एवं फलन :

इसमें पुष्पन और फलन जून से अक्टूबर तक होता है। (सामन्त आदि 2007)

आबादी स्थिति

पॉलीगोनेटस वर्टीसाइलेटम के प्राकृतिकवास विश्व के कई भागों में क्षतिग्रस्त हो गये हैं (क) अतिदोहन

के कारण अनियंत्रित फसलीकरण, अतिचराई तथा क्षेत्र में ह्रास होती हुई प्रजातियों के प्रति जागरूकता की कमी (भट्ट आदि 2014)। कुछ भागों में पादपों का उपयोग जड़ीय प्रतिपादन में किया गया जिससे इसके बाजार मूल्य बढ़ा और लोग पादप को परिपक्वता से पहले एकत्र करने लगे जिसके कारण परिपक्व बीजों की मात्रा कम हो गई और बड़ी संख्या में बीजों का विनाश भी हुआ (शर्मा आदि 2011)। इसके अलावा, पादप को ही मृदा से उखाड़ा जाता है जिससे पादप का विनाश हो जाता है। अतः इसके स्वस्थानिक तथा परास्थानिक संरक्षण और प्रसारण की आवश्यकता है ताकि इस महत्वपूर्ण औषधीय पादप को संरक्षित किया जा सके।

पॉलीगोनेटस वर्टीक्यूलम का आबादी घनत्व, अवस्थिति तथा तुंगता पर निर्भर करता है जैसे 1.50 (एकल एम^2) का घनत्व चंद्रभाग हिमाचल प्रदेश में पाया गया। (बुटोला तथा बडोला 2008)। (0.07 / 1.33) रकचाम चिटकुल (वर्मा और कपूर 2014), 1.56 जीएचएनपी, कुल्लू (एनएमएचएस प्रगाति रिपोर्ट 2018) में पाया गया। इसी प्रकार उत्तराखंड में 4.40 पादप एम^2 (मुक्तेश्वर और सागर) तथा 2.60 पादप एम^2 (भमन गुफा) में पाया गया (लोहानी आदि 2013)।

संरक्षण स्थिति

सीएएमपी रिपोर्ट, शिमला के अनुसार इस प्रजाति को संवेदनशील के रूप में श्रेणीबद्ध किया गया है।

संभावित खतरे

प्रकंदों तथा अन्य अंगों का औषधीय उपयोग के लिए अतिदोहन और परिणामस्वरूप प्राकृतिक वासस्थलों का निम्नीकरण इस प्रजाति के लिए मुख्य खतरा है (सामन्त आदि 2007)। पी वर्टीसाइलोरम की आईयूसीएन की लालसूची में देश में संकटापन्न के रूप में श्रेणीबद्ध किया गया है (वेद आदि 2015)। विध्वंसक फस्लीकरण के कारण भी इस पादप का ह्रास और निम्नीकरण हुआ है। वनीय संसाधनों से एकत्र करके इस पादप का औषधीय उपयोग के लिए दोहन करने से आनुवंशीय स्टॉक की अपूर्णीय क्षति हुई है। वितरण की सीमित परिधि, भूमि उपयोजन संबंधी समस्याओं, गैर देशजों को स्थापित करने, वासस्थल उपान्तरण, जलवायुवीय परिवर्तन, पशुओं द्वारा अति चराई, मानव घनत्व में अत्यंत वृद्धि, पादप घनत्व में निम्नीकरण और विखंडन, आबादी से अवरूद्ध हो जाना तथा आनुवंशीय समस्यायें आदि कुछ कारक हैं जिससे इस औषधीय पादप का ह्रास हुआ है (काला आदि 2006; काला 2007)।

औषधीय उपयोग

पॉलीगोनेटस वर्टीसिलेटक, अष्टवर्ग का महत्वपूर्ण घटक है। यह हिमालयी पादपों के जड़ीय उपयोग हेतु औषधीय जड़ी है जिसका उपयोग मूत्र संबंधी गड़बड़ी में किया जाता है। इसका उपयोग तंतुओं को शक्ति प्रदान करने, सामान्य कमजोरी दूर करने, शुक्रजनन करने, बवासीर ठीक करने, श्वेताणु, अनीमिया, गैस्ट्रिक समस्याओं, घावों, गाठियां, कामशक्तिवर्धक, भूख बढ़ाने, पीठ के दर्द, मासिकधर्म संबंधी समस्याओं, शक्तिवर्धक, पुनर्योवन, भूख बढ़ाने में किया जाता है। इसे कच्ची वनस्पति के रूप में खाया जाता है। इसके प्रकंदों से गठिया रोग ठीक किया जाता है। शरीर की सामान्य कमजोरी को दूर किया जाता है। यह कामशक्ति में वृद्धि करता है, तुंतओं को स्वास्थ करना है, किडनी की समस्या दूर करता है, घाव ठीक करता है और प्रशीतक है। वातपित्त की समस्या को सामान्य करता है, भूख बढ़ाता है, शुक्र जनन करता है तथा इसमें कैन्सररोधी गुण होते हैं। फोड़े फुन्सियों को ठीक करता है। इसे दुग्ध उत्पादों के साथ मिलाकर टॉनिक के रूप में खाया जाता हैं। प्रकंद का उपयोग वीर्य संबंधी कमजोरी दूर करने, कैन्सररोधी,

बुखार, सामान्य कमजोरी में किया जाता है। इसके सेवन से शरीर का ताप बढ़ता है, कामशक्ति वर्धक है। तंतु टॉनिक है, मूत्ररोग दूर करता है। तिल्ली के दर्द को शान्त करता है, वोझिलपन्न दूर करता है। इसका हरित पर्णसमूह पोषक होता है जिसे सब्जी के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। तनों को अन्य जड़ियों के साथ पकाकर खाया जाता है। बीजों को खाने से अपच दूर होता है। पूरी जड़ी का उपयोग पेट की तखलीफ दूर करने, तन्तुओं को शक्तिवान बनाने, किडनी की समस्या ठीक करने तथा शरीरिक शक्ति पुनः प्राप्त करने में किया जाता है।

उत्तम फस्लीकरण तथा एकत्रण पद्धतियां

स्थानीय समुदायों द्वारा वनों से पी वर्टीसाइलेहम को बड़ी मात्रा मे एकत्र किया जाता है जिससे इसकी आबादी कम हो रही है। इसके अन्य अंगों की तुलना में प्रकंदों की मांग अधिक रहती है क्योंकि इनका औषधीय मूल्य अधिक है जिसके लिए (क) प्रकंद एकत्र करने के लिए पूरे पादप के पास की मृदा को खोदा जाता है, जिससे आसपास के पादप बरबाद हो जाते है। (ख) जागरूकता के अभाव में स्थानीय समुदायों द्वारा घासों और झाड़ियों का अंधाधुंध कटान किया गया जिससे भूमि के अन्दर के अंग क्षतिग्रस्त हो गये और परिपक्व बीज भी बरबाद हो गये। इस प्रकार इन पादपों की आबादी में कमी आई। दूसरा मुख्य कारण जलवायुवीय स्थितियों में परिवर्तन है जो कि विश्व की विभिन्न पारिपद्धतियों में जारी है। इसी प्रकार हिमालयी क्षेत्र में परिवर्तन हो रहे हैं जो प्राकृतिक वनस्पति का मुख्य स्रोत है। मनुष्यों द्वारा प्राकृतिक वनस्पति का विनाश किया जाना, भौगोलिक स्थिति और जलवायुवीय स्थितियों में परिवर्तन से पादप की समग्र उपलब्धता और घनत्व पर बुरा प्रभाव पड़ा है बिष्ट आदि (2012) ने निष्कर्ष निकाला है कि कुछ पादपों को विशेष प्रकार के वासस्थल चाहिए। किसी पादप के वितरण की परिधि–सीमित होती है, भूमि उपयोजन, मनुष्यों द्वारा हस्तक्षेप, गैर देशज पादपों का प्रसार, आक्रामक प्रजातियों का प्रसार, वासस्थल परिवर्तन, जलवायु परिवर्तन, चराई का भारी दबाव, मानव आबादी में अतिशय वृद्धि, विखंडन तथा पादप घनत्व में निम्नीकरण आबादी प्रतिबंधन तथा आनुवंशीय समस्या कुछ कारण हैं जो इस औषधीय पादप के विनाश के लिए उत्तरदायी हैं। विश्व के कुछ भागों में पशुपालन का कार्य औरतों के हाथ में होता है। वे पशुओं के लिए नजदीकी वनों से चारा एकत्र करती हैं और पहचान की जानकारी न होने के कारण वे चाराघास के साथ औषधीय पादप को काट देती हैं। अतः यह औषधीय पादपों के संकटापन्न होने का एक कारण है।

फस्लीकरण

प्रबंधित तथा सतत् फस्लीकरण के लिए निम्नलिखित फसल पद्धतियां को अपनाने की सलाह दी जाती है।

क्या एकत्र करना है : जड़ें, प्रकंद, ट्यूब्स, प्रकंद, हरित पर्ण समूह, बीज सहित सलम मिश्री के पूरे पादप का फस्लीकरण किया जाता है। फालतू खुदाई और अन्य प्रजातियों को नुकसान से बचाने के लिए सलम मिश्री के पादप की उचित पहचान की जानी चाहिए।

किस स्थिति में : सितम्बर से मुख्यतः जड़ों और प्रकंदों का फस्लीकरण होता है जब पौधे या उनके ऊपरी भाग शुष्क होने लगते हैं या सूखने लगते हैं।

कब : संग्रह अवधि मध्य जुलाई से सितम्बर है। पादप को पूर्ण परिपक्वता के बाद एकत्र करना चाहिए। सर्वोत्तम फस्लीकरण का समय तब होता है जब पादप के ऊपरी अंग ठीक तरह से शुष्क हो जांये।

कैसे : पूरे पादप को खोदा जाता हैं और गनी बैग्ज में रखा जाता है। सलम मिश्री के अंगों को मृदा से खोदकर निकाला जाता है इसलिए खुदाई का काम उचित उपकरणों से सावधानीपूर्वक करना चाहिए ताकि आसपास के पौधों को नुकसान न हो।

एकत्रण के बाद प्रहस्तन : एकत्रण के बाद इन प्रकंदों को ठीक तरह से धोया जाता है। बहते हुए पानी में मृदा के अवयव साफ किये जाते हैं और छोटे–छोटे टुकड़े करके सुखाने के लिए आंशिक छाया में रखा जाते है।

सवंर्धन एवं प्रसारण

बीज : बीज बोने का सर्वोत्तम समय पतझड़ के प्रारंभ में होता है। बीच को ठन्डे ग्रीनहाउस के छाया वाले भाग में बोना चाहिए। भण्डारित बीजों को यथासंभव वर्ष के आरंभ में बोना चाहिए। अंकुरण धीमा हो सकता हैं। जब पौधें प्रहस्तन योग्य हो जाते हैं तब उन्हें पहले सर्दी के मौसम में ग्रीनहाउस की छायादार स्थिति में रखना चाहिए। पौधों को वसन्त या गर्मी के मौसम के प्रारंभ में स्थाई स्थिति में रोपित करना चाहिए जब पाले की आशंका कम हो जाती है। बसन्त के आरंभ या पतझड़ के समय इन्हें उचित स्थान पर स्थापित करना चाहिए। बड़े प्रभागों में उन्हें सीधे ही स्थाई स्थिति में रोपित किया जा सकता है। हमने पाया कि पौंधों को लघु प्रभागों में पॉट में ठन्डे वातावरण में रखना चाहिए और वसन्त के अन्त या गर्मी के प्रारंभ में स्थापित कर देना चाहिए। पादपों को प्रकंद विस्तार से वानस्पतिक रूप से पुनः स्थापित करना चाहिए लेकिन बीजों को विकसित करके उगाने पर फलन सामान्यतः कम होता है और फलन में निरंतरता की कमी रहती है (सिंह आदि 2009)।

पिक्रोरिजा कुरूआ रॉयल एक्स बेंथ

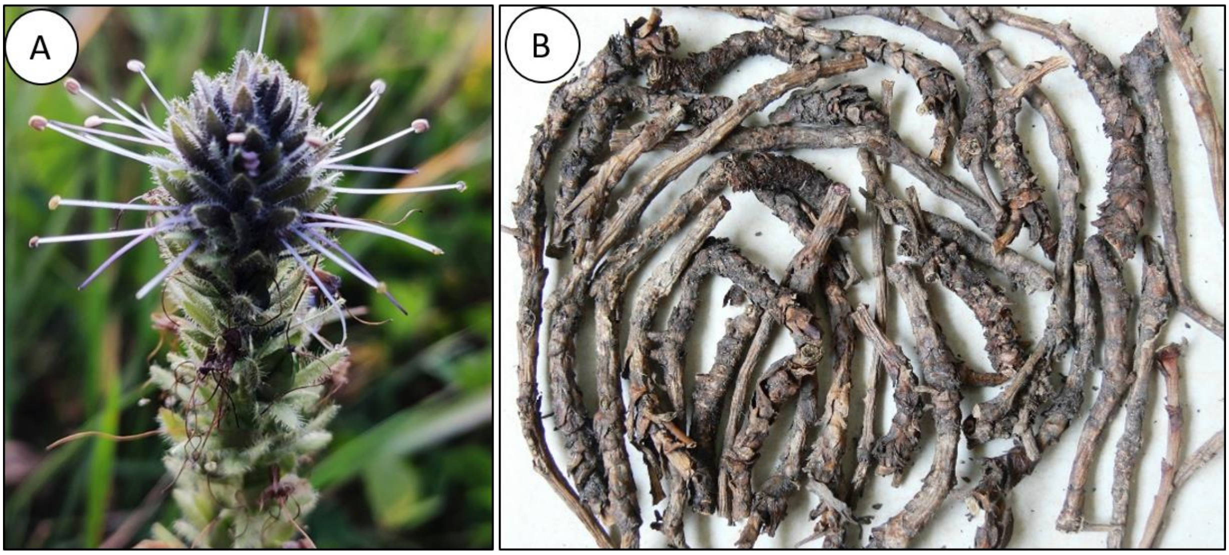

पिक्रोरिजा कुरूआ, **ए**–पुष्प **बी**–जड अमित कुमार तथा जीएस गोराया

प्रजाति और अवस्थिति प्रोफाईल

व्युत्पति : *पिक्रोरिजा कुरूआ* को सामान्यतः कुटकी कहा जाता है। यह स्कोफ्यूलेरियनसाई कुल से संबंधित है। पिक्रोरिजा वंश यूनानी शब्द पाईक्रास से संबंधित है जिसका अर्थ कड़वा होता है जबकि रिजा का अर्थ जड़ से होता है। प्रजाति का नाम कारू पंजाबी बोली से लिया गया है जिसका अर्थ होता है कड़वा।

देशी नाम : कली कुटकी, तिक्ता, कटवी और कट्ठका

व्यावसायिक नाम : कुटकी

यूनानी नाम : कुटकी

आयुर्वेदिक नाम : कटुका

संस्कृत नाम : अंजानी, अरिस्था

वासस्थल और वितरण

वासस्थल

कुटकी वारहमासी विसर्पी जड़ी है जो कश्मीर से सिक्किम तक उत्तर–पश्चिमी हिमालयी क्षेत्र के वनों में पाई जाती है। प्राकृतिक रूप से कुटकी 3000–5000 एमएएसएल में उगती है (समरंत आदि 2007)। यह नम, अपेक्षाकृत कम खुले, उत्तर–पश्चिम की ओर के ढालनों में वसन्त में नम चट्टानों में वृक्षवीथि से लेकर तुंगीय स्थलों में देखी जा सकती है। कुटकी वनों में वसन्त के दौरान नम चट्टानों में वृक्षवीथियुक्त

तुंगताओं में पाई जाती है। यह सपाट ग्लेसियरों की चट्टानों और मुलायम घासों की आर्गेनिक मृदा में पाई जाती है (मसूद आदि 2015)।

वैश्विक वितरण

कुटकी पाकिस्तान, भारत, नेपाल, भूटान और दक्षिणी चीन के हिमालयी भागों में वितरित है। भारत में *पिक्रोरिजा* मुख्यत : उत्तरपूर्वी हिमालयी क्षेत्रों में उपस्थित है। कुटकी, छोटा भागल, हिमाचल प्रदेश में पाई जाती है (कुमार आदि 2021)। यह उत्तराखंड की चौरास घाटी में पाई जाती है (जोशी आदि 2010)। यह सिक्किम में जम्मू मे पाई जाती है (भट्टाचार्य आदि 2013), और जम्मू–कश्मीर में पाई जाती है (दावा आदि 2018)। हिमाचल प्रदेश में यह मुख्यत : चम्बा, कांगड़ा, मन्डी, शिमला, किन्नौर तथा लाहौल–स्पीती जिलों में ऊंचे स्थलो में पाई जाती है (कुमार आदि 2012)।

आकृति विज्ञान तथा ऋतुजैविकी

वर्गीकरण वितरण

कुटकी प्रकंदयुक्त बारहमासी जड़ी है। इसकी पत्तियां समतल, आधारीय, एकांतर, दंतुर, 5–10 से0मी0 लम्बी होती हैं। इनके अन्तस्थ नोकदार, 5 पिण्डकयुक्त 4–5 एमएम लम्बी, एक्टीनोमार्फिक होती हैं। प्रकंद 2.5–12.0 से0मी0 लम्बी और उसे 10 से0मी0 मोटी सिलिन्डर की तरह, सीधी या मुड़ी हुई होती है। जड़ें लम्बी, ट्यूबलर, 5–10 से0 लम्बी और 5–10 एमएम व्यास की होती है। ये सीधी या आंशिक रूप से मुड़ी हुई होती है और प्रकंदों से जुड़ी हुई रहती है। फूल छोटे, हल्के बैंगनी नीले होते हैं जो सिलिंडर की तरह स्पाईक्स में लम्बे पुंकेसर से जुड़ी होती हैं। फल 1.3 से0मी0 लम्बे होते हैं। फल किस्में अक्सर दो चेम्बर कैप्सूल में होते हैं। इसके पुष्प असीमाक्ष होते हैं जो घने दंतुर असीमाक्षों से जुड़े होते हैं जो बैंगनी–नीले रंग के होते हैं (कन्सांग 2016)। फल अण्डाकार कैप्सूल की तरह होते हैं जिनमें कई बीज होते हैं।

पुष्पन एवं फलन : कुटकी की पुष्पन अवधि जून से अगस्त तक होती है। इसमें 1 से0मी0 लम्बे बैंगनी फूल लगते है।

आबादी स्थिति

पिक्रोरिजा कुरूआ का तुंगीय तथा अतुंगीय क्षेत्रों में सीमित वितरण है जहां इसकी उत्पति वाणिन्यिक उद्देश्यों के लिए विशिष्ट वासस्थलों में होती है। इसे मुख्यत : वनों से दोहित किया जाता है (आर्या आदि 2013)। उच्च संरक्षण प्राथमिकताओं में औषधीय और सुरभित पादपों का पुनरूत्पाद कम है। इसी प्रकार, पी कुरूआ का घनत्व प्रतिवर्ग मीटर 0.38 है। पौधों का घनत्व 0.13 और सैपलिंग का घनत्व 0.07 प्रति वर्ग मीटर था (उनियाल आदि 2011)। उत्तराखंड, खासकर कुमाऊं क्षेत्र में प्रजाति का कमजोर आपेक्षिक घनत्व पाया गया जो 0.03 प्रतिवर्ग मीटर था (आर्या आदि 2013)।

संरक्षण स्थिति

वनों में अनियोजित उत्पादन और अति एकत्रण से इसे 'सकंटापन्न' की सूची में डाला गया है (रावत आदि 2013)। आर्या आदि (2013) के अनुसार टैक्सान को दुर्लभ और खतरे में पड़ी प्रजाति माना गया है जिसका मुख्य कारण इसके प्राकृतिकवासों का विनाश और अतिदोहन है।

संभावित खतरे

पिक्रोरिजा विभिन्न खतरों से प्रभावित है जैसे वाणिज्यिक व्यापार के लिए अतिदोहन, प्राकृतिक वासस्थलों का निम्नीकरण, अनियंत्रित फस्लीकरण पद्धतियां, अवैध व्यापार तथा अनियोजित खेती (रावत आदि 2013)। कुटकी का निष्कर्षण अचयनित और अप्रबंधित है जिससे अन्ततः इसी इसकी जीवनक्षमता और पुनर्जीवन क्षमता को खतरा हो गया है (उनियाल आदि 2011)।

औषधीय उपयोग

कुटकी को भारतीय परम्परागत औषधि पद्धति में व्यापक रूप से प्रयुक्त किया जाता है। इसके प्रकंदों को कीटाणुनाशक, उत्पादवर्धक क्लोरी रोधी, आक्सीडेंटरोधी और उन्मुक्तता गुणों के कारण मूल्यवान समझा जाता है (कांत आदि 2013)। स्थानीय लोग इसका उपयोग खांसी, ठंड, पेटदर्द, बुखार, अपच, पीलिया, डायरिया, पेचिस तथा पशुचिकित्सा में करते हैं। प्रकंदों का उपयोग चमड़ी रोगों, लीवर की बीमारी, अपच की समस्या और उपापचयी गड़बड़ी में किया जाता है। पादप के निष्कर्षण में कुछ महत्वपूर्ण रासायनिक घटक पाये जाते हैं जैसे कार्बोहाइड्रेट, सुरभित अम्ल, वेनीलिक अम्ल तथा फेरूचिक अम्ल (मसूद आदि 2015)।

बाजार व्यापार

कुटकी भूमिगत भागों (जड़ों और प्रकंदों) को हिमालय के उच्च तुंगीय तथा तुंगीय भागों से निष्कर्षित करके कच्ची दवा सामग्री के रूप में बेचा जाता है (मसूद आदि 2015)। नेपाल, भारत और भूटान से कुटकी की आपूर्ति 375 एसडी आकलित की गई है। भारत के विभिन्न सेक्टरों में इसकी खपत आकलन 415 एमटी/वर्ष है। अन्य बाजार मूल्य होने के कारण इसे बड़े पैमाने पर निष्कर्षित किया जाता है। जैसे 1980 में हिमाचल प्रदेश से 1.468 एम तथा छोटा भंगल की तुंगीय परिधियों से 9.06 एमटी का निष्कर्षण किया गया। 2001–2004 में गोरी घाटी के 12 गांवों से प्रतिवर्ष 5 एमटी से अधिक का निष्कर्षण हुआ और सिक्किम से प्रतिवर्ष 6 एमटी का निष्कर्षण होता है। 2007–2010 तक ग्राम स्तर पर कुटकी का मूल्य 220 से 340 रू0/कि0ग्रा0 था। कुल 200–300 पादपों की फसल काटी जाती है और 500–600 पाइकोरिया के जड़ीय अंगों का शुष्क भार 1 कि0ग्रा0 होता है (उनियाल आदि 2011)।

उत्तम फस्लीकरण तथा संग्रह पद्धतियां

कुटकी की बढ़ती हुई वाणिज्यिक मांग, अप्रबंधित, आयोजित खेती और फसल पद्धति के कारण कुटकी की वनीय आबादी प्रभावित हुई है। पादप को पूर्ण परिपक्व होने के उपरान्त एकत्रित करना चाहिए। कुटकी के भूमिगत भागों (जड़, प्रकंद) को पूरे पादप को खोदने के बाद निकाला जाता है। रेत, गंदगी तथा वाहरी आर्गेनिक भागों को हटाया जाता है और फिर पादप को छाया में सुखाया जाता है (आर्या

आदि 2013)। कुटकी के उत्पाद को निरंतरता के आधार पर प्राप्त करना ही उत्तम फसल तकनीक कहलायेगी। कुटकी की बाजार मांग को पूरा करने के लिए अप्रबंधित और अनिरंतरता फस्लीकरण पद्धतियां अपनाई जाती है जिससे पता चलता है कि इसका फस्लीकरण (क) फसल के परिपक्व होने से पहले (ख) तनों के शुष्क होने और मुरझाने से पहले मृदा को अधिक गहराई तक खोदकर आसपास के पौधों को नुकसान पहुंचाकर (ग) मृदा को गहराई तक खोदकर आसपास के पादपों को नुकसान पहुंचाकर (घ) उचित रूप से शुष्कित करने से पूर्व (च) फस्लीकृत क्षेत्र को विहित आराम देने से पहले ही काम में लाये जाने से इसका ह्रास होता जा रहा है। कुछ एकत्रित उत्पाद उचित प्रहस्तन के क्षतिग्रस्त हो जाते हैं और वनीय संसाधनाों पर और अधिक दबाव पड़ता है। इसलिए वनीय एकत्रण करने वालों को नुकसान नहीं होने देने के प्रति शिक्षित करना होगा और अनियमित वनीय फस्लीकरण की बजाय, उत्तम फस्लीकरण पद्धतियों को अपनाना होगा तथा फसलोपरान्त प्रहस्तन पर विशेष ध्यान देना होगा।

फस्लीकरण

सुप्रबंधित और सतत फस्लीकरण के लिए निम्नलिखित उत्तम फस्लीकरण 'पद्धतियों को अपनाने की सलाह दी जाती है।

क्या एकत्र करना है : कुटकी की जड़ों और प्रकंदों को एकत्र किया जाता है। अनावश्यक खुदाई से बचने के लिए कुटकी की उचित पहचान करना आवश्यक है।

किस स्थिति में : जड़ों और प्रकंदों को सितम्बर में मनुष्यों द्वारा एकत्रित किया जाता है जब पौधों के ऊपरी भाग शुष्क हो जाते हैं। कुटकी का जीवन चक्र तीन वर्ष का होता है जिसमें एक वर्ष बीजों की परिपक्व होने में लगता है। उच्च सक्रिय सामग्री प्राप्त करने के लिए पादपों को पुष्पन से पूर्व एकत्र करना चाहिए। पुनरूत्पाद अवधि का पूर्ण होना तुंगता पर निर्भर करना है। सामान्यतः यह पादप तुंगीय क्षेत्रों में उगता है और सितम्बर–अक्टूबर में पुनरूत्पादन अवधि पूरी करता है, जबकि कम ऊंचाई पर उगने वाले पादप अपनी पुनरूत्पादन अवधि सितम्बर में पूरी करते हैं।

कब : कुटकी की एकत्रण अवधि मध्य जून से सितम्बर तक है। पादप को पूर्ण परिपक्वता के बाद एकत्र करना चाहिए। सर्वोत्तम फस्लीकरण अवधि तक होती है जब ऊपरी भाग ठीक तरह से सूख जाते हैं।

कैसे : पूरे पादप को खोदकर गन्नी बोरों में रखा जाता है। कुटकी पादप की जड़ों ओर प्रकंदों को मृदा से खोदकर निकाला जाता है इसलिये खुदाई के लिए उपयुक्त औजार होने चाहिए जिनसे आस पास के पौधों को नुकसान न हो।

फस्लोपरांत प्रहस्तन : एकत्रण के बाद सामग्री और जड़ों को धोया जाता है और कीचड़ आदि अवांछित सामग्री को हटाया जाता है। स्टोलोन्स और जड़ों को छाया में सुखाया जाता है ताकि उच्च मात्रा फिक्रोटिन और पिक्रोटाक्सीन युक्त उत्पाद मिल सके। उचित ढंग से सुखाना एक जटिल प्रक्रिया है क्योंकि व्यापारी स्वच्छ और शुष्कित सामग्री का अधिक मूल्य देते हैं इसलिए कुटकी को कक्षीय तापमान (15–25 डि0से0) में सुखाया जाता है। शुष्कन के पूर्ण हो जाने के उपरांत ताजी सामग्री आधी रह जाती है। सीधे सूर्य प्रकाश या ओवन में नहीं सुखाना चाहिए क्योंकि इससे सक्रिय पदार्थ तीव्रता से नष्ट हो जाते हैं। पादप के एक बार पूर्णतः सूख जाने पर उसे गन्नी बोरों में बंद किया जाता है या वायुरूद्ध पॉलीथीन या जूट के थैलों में बंद किया जाता है जिससे नमी से बचाव हो सके (चांद आदि 2015)।

संवर्धन तथा प्रसारण

कुटकी के संवर्धन से वनीय पादप आबादी पर निश्चित रूप से दबाव कम होगा, उद्योग को सामग्री की नितरंतर आपूर्ति होती रहेगी और स्थानीय किसानों की आर्थिक स्थिति बेहत्तर होगी। पाइक्रोरिजा कुरूआ को बीजों और स्टोलोन्स के द्वारा स्टायरोफोम ट्रे और पौधशाला की क्यारियों में उगाया गया (रावत आदि 2013)। स्टायरोफार्म पौध ट्रे में ऊपरी मृदा के साथ शुष्क मांस पाउडर के साथ उगाने में बीजों में उत्तम अंकुरण हुआ। इस प्रकार कम तुंगता में बीज अंकुरण 52 से 58ः हो गया। बीजों को नवम्बर–दिसम्बर में ग्रीनहाउसों में बोया जाता है। कम तुंगता में वाले क्षेत्रों में मार्च–अप्रैल में क्यारियों में बोया जाता है और तुंगीय क्षेत्रों में मई मे बोया जाता है। कम ऊंचाई पर बीजों से उगे पौधों को उच्च तुंगता क्षेत्र में मार्च–अप्रैल में पहुंचाया जाता है और पौधशाला क्यारियों में प्रतिरोपित किया जाता है। इस प्रकार फस्लीकरण की अवधि को कम से कम छः महीने कम किया जा सकता है। इसके लिए पौधों को कम तुंगता में सर्दियों में उगाया जाता है और बसन्त में उच्च तुंगीय भाग में प्रतिरोपित किया जाता है। स्टोलोन कर्तनों से बीजों की बजाय अधिक सफलता प्राप्त हुई है। हारमोन उपचार के द्वारा स्टोलोन खंडों का वानस्पतिक प्रसार सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इसे सरल पद्धतियों से भी किया जा सकता है जिनमें स्टोलन के खंडों के ऊपरी भागों से बहुगुणन हो जाता है। कुटकी की फोइनीक्यूलम वल्गारी, सोलेनम ट्यूबरोसम तथा डिजीटेल्स परपुइया के साथ सफलतापूर्ण उगाया जा सकता है क्योंकि ये पादप उत्तम वृद्धि के लिए आवश्यक माइक्रोक्लाईमेंट मुहैया कराते हैं, लम्बे समय तक नमी बनाये रखते हैं और कुटकी की अच्छी वृद्धि के लिए उपयुक्त छाया प्रदान करते हैं (चांद आदि 2015)।

संदर्भ

आगाह एस, तालिब, एएम, मोइनी आर, आदि (2013)। रोगियों में लक्षण नियंत्रण हेतु बाउल सेन्ट्रोन : एक कार्य अध्ययन श्रृंखला। मध्यपूर्ण जारनल डायजेस्टिव 5(4): 217–222.

अगरवाल एस तथा जेट्टर एल डब्ल्यू (2010): संकटापन्न पार्थिव आर्किड का पुनरूत्पादन डाक्टलोरिहिअ हेटाजेरिया (डी.डॉन)। एसओओ सेंड्रांमिक बीज अंकुरण से सहायता प्राप्त। भारतीय उपमहाद्वीप से द्वितीय रिपोर्ट। प्रकृति तथा विज्ञान 8 (10): 139-145.

अग्निहोत्री पी, हुसैन डी, हुसैन टी (2015)। वैविध्य आकलन देशज एवं वितरण वंश एकोनीटम एल (रेनिन क्यूलेसाई) भारत मैर प्लीओनी 9(1): 95–102

एरी एस रावत आर एस धर , यू आदि (1997)। पोडोफाइलम हेक्जांड्रम रॉयल पर प्रमुख अध्ययन। हिमालय में व्याप्त औषधीय पादप। पादप आनुवंशीय संसाधन न्यूज लेटर 110: 29–34

एमिनजारे एम आमीन ई, अब्बासी जेड आदि (2017)। भीतरी एन्टीऑक्सीडांट अभिलक्षण कॉम स्टार्च, जैव सक्रिय फर्म ब्यूनियम पर्सीकम तथा जेटेरिया मल्टीफलोरा सुरभित तेलों से सिंचित। वार्षिक अनुसंधान एवं समीक्षा जीव विज्ञान 15(5) 1–9 https://doi.org/10.9734/ARRB/2017/35155

आर्या डी भट्ट डी कुमार आर आदि (2013)। प्राकृतिक संसधनों के विद्यार्थी, व्यापार एवं सरंक्षण : कुटकी (पाइकोरिजा कुरूआ रायल एक्स बेंथ, स्कोफ्यूरेन्साई) कुमांऊ हिमालय से वैज्ञानिक अनुसंधान तथा निबंध 8(14): 575–580 https://doi.org/10.5897/SRE 12.495

असवाल बी एस मेहरोत्रा बी एल (1994)। प्लोरा आफ लाहौल स्पीती (उत्तर पश्चिमी हिमालय का शीत रेगिस्तान) बिशनसिंह महेंद्रपाल सिंह, देहरादून पे0 761

बेग बी ए राममूर्ती डी, बानी बी ए (2014)। खतरे में पड़ी कुछ औषध प्रजातियों के सरंक्षण की प्राथमिकता : कश्मीर हिमायलय। अन्तर्राष्ट्रीय जार्नल प्रायोगिक जीव विज्ञान तथा फार्मेसीटीकल प्रौद्योगिकी 5:1–14

बंसल एस, ठाकुर एस, मंगल एम आदि (2018)। डीएनए बार्कोरिंग विथिम संवेदनात्मक निरूद्धीकरण क्यूमिनी साथ मिनीमठ सायमिनी मिलावट : क्यूनियम पर्सीकम में फाइटोमेडीसिक 50 : 178–83

बराल एस आर, कुम्मी पी पी (2006)। नेपाल में औषधीय पादपों का कम्पेडियम : रचना शर्मा काठमांडु, नेपाल पीपी 452–462

बारगली एच, मथेला एम शर्मा आर आदि (2021)। हिमाचल प्रदेश पश्चिमी हिमालय में पादप अध्ययन। क्रमबद्ध समीक्षा जार्नल आफ माउन्टेन साईन्स। 18(7)1856–1873 https://doi.org/10.1007/s11629-020-6401-z

बिहोटी एच एमीनी जेवाटी टी आदि (2012)। ब्यूनियम कारकम काप्टोकम तथा साइनोमोन्न जेलारीकम सुरभित तेलों का देशज फंगलरोधी संघटन जारनल आफ मेडिकल प्लान्ट्स रिसर्च 6(37) : 5069–5076

बीघ एस वाई नाउकू आई ए इकबाल एम (2006)। कल्टीवेटम तथा संरक्षण : एकोनीटम हेट्राफाईलम : अत्यन्त संकटापन्न औषधीय जड़ी : उत्तर पश्चिमी हिमालय। जार्नल आफ स्पाईस एन्ड मेडिसनल प्लान्ट 11(4) : 47–56 https://doi.org/10.1300/J044v11n04-06

बेल्ट जे, लंगकीक ए वान डेर जांत जी (2003)। सतत् चिकित्सा पादप श्रंखला का विकास : उत्तरांचल भारत बुलेटिन आफ द रायल ट्रापीकल इन्स्टीट्यूट के आई टी प्रकाशन : एम्सटीडन, नेदरलैंड पीपी 1–56

भदूला एस के, सिंह ए , लता एच आदि (1996)। पोडोफाईलम हेक्जाड्स रायता का आनुवंशीय संसाधन : गढ़वाल हिमालय से औषधीय प्रजातियां। भारत पादप आनुवंशीय संसाधन न्यूजलेटर 106 : 26–29

भट्ट ए, जोशी एस के, गैरोला एस (2005)। डक्टाइलोरिजा हेटेजेनरिया (डी डॉन) एस ओ ओ – पश्चिमी हिमालयी जड़ी – खतरे में। वर्तमान विज्ञान 89(4) 610–612

भट्ट जी, कुमार ए, तिवारी एल एन आदि (2014)। पॉलीगोनेटम क्यूरीफोरीलम रॉयल तथा पॉलीगोनेटम, वर्टीकेलेटम (एल) एलिओनी : स्थिति आकलन तथा औषधीय उपयोग : उत्तराखंड भारत : औषधीय पादप अनुसंधान जारनल 8(5) : 253–259 https://doi.org/10-5897/JMPR2013.5234

भट्टाचार्यजी एस, भट्टाचार्य एस, जना आदि (2013)। पाइकोरिजा की महत्वपूर्ण औषधीय प्रजाति की समीक्षा, फार्मेसिटीक्ल अनुसंधान और जैवविज्ञान का अन्तर्राष्ट्रीय जारनल 2(4) : 1–16

बिष्ट एस, बिष्ट एन एस, भण्डारी एम (2012)। पॉलीगोनेटम वर्टीक्यूलेटम (एल) का इन–वेट्रो माइक्रोप्रोपगेशन। एक महत्वपूर्ण संकटापन्न जड़ी प्रजाति – उत्तरी भारत पादपों का शरीरक्रिया विज्ञान तथा आणविक जीव विज्ञान। 18(1) : 89–93 https://doi.org/10.1007/s12298-011-0091.5

बिष्ट वी के, नेगी बी एस, भण्डारी ए के आदि (2016)। फ्रीटीलोरिया रायलाई हूक, पश्चिमी हिमालय : प्रजाति जीव विज्ञान, परम्परागत उपयोग रासायनिक संघटक, सुअवसरों की खोज। औषधीय पादपों का अनुसंधान जार्नल 10 : 375–381 https://doi.org/10.3923/rjmp.2016.375.381

बुटोला जे एस, बडोला एच के (2008)। खतरे में पड़ें औषधीय पादप तथा हिमाचल प्रदेश में उनका सरंक्षण ; उष्णकटिबंधीय औषधीय पादपों का जार्नल 9 (1) : 125–142

चहोटा आर के, शर्मा वी, एम घानी आदि (2017)। ब्यूनियम पर्सीकम आबादी का उत्तर पूर्वी हिमालय में आनुवंशीय फाइटोकेमिकल वैविध्य विश्लेषण। पादपों का शरीर क्रिया विज्ञानीय मालीक्यूलर जीव विज्ञान 23(2) : 429–441

चांद जी, मालिक जेड ए, नौटियाल एम सी (2015)। गढ़वाल हिमालय में संवर्धन से पाइकोरिजा कुरूआ का संरक्षण : एक समीक्षा जड़ीय औषधीयों का अन्तर्राष्ट्रीय जारनल 4(1) : 64–68

चौहान ए, जिश्तू वी, ठाकुर एल आदि (2020)। लददाख के पराहिमालयी शीत रेगिस्तानी औषधीय पादपों की समीक्षा। अन्तर्राष्ट्रीय विज्ञान जार्नल पर्यावरण 9(2) : 239–253

चौहान एन एस (1999)। हिमाचल प्रदेश औषधीय तथा सुरभित पादप, इन्डूज पब्लिशिक कम्पनी, टैगोर गार्डन नई दिल्ली पे0 632

चौहान एन एस (2001)। हिमाचल प्रदेश की चयनित प्रजातियों का घेरलूकरण। इन समन्त एस एस आदि (ईडीए) हिमालयी औषधीय पादप, संभावनायें और क्षमतायें। ज्ञानोदय नैनीताल, पे 285–307

चौहान आर एस, नौटियाल एम सी, सिल्वा जे ए आदि (2011 ए)। वासस्थल प्राथमिकतायें, पारिपद्धतीय प्राचल तथा फ्रीटीलोरिया रायलाई हूक का संरक्षण – अष्ट वर्ग ग्रुप की संकटापन्न औषधीय जड़ी। बायोरिमेडिएशन जैवविविधता तथा जैव उपलब्धता 5(1) : 73–76

चौहान आर एस, नौटियाल एम सी, वशिष्ट आर के आदि (2011 ए) मोर्फा–बायकेमीकल बैराइट तथा चयन रणनीतियां – जर्मप्लाज्म फ्रीटीलोरयिा रायल हूक (चिलीसापाई) एक संकटापन्न औषधीय जड़ी – पश्चिमी हिमालय भारत। पादप प्रजनन फसल विज्ञान का जार्नल 3(16) : 430–434 https://doi.org/doi.org/10.5897/JBPCS.9000093

चौहान आर एस, नौटियाल एम सी, वशिष्ट आर के तथा प्रसाद पी (2014)। मार्फोबायोकेमिकल वैविध्य तथा डेक्टेलोरिया हेटेजेरिया (डीडॉन) के जर्मप्लाज्म हेतु चयन रणनीतियां। बॉटनी के संकटापन्न औषधीय आर्किड का जार्नल 869167 https://doi.org/10.1155/2014/869167

चौरसिया ओपी, बल्लभ बी, तयावे ए आदि (2012)। पोडोफाईलम एल : संकटापन्न और कैंसररोधी औषधीय पादप – विहंगम दृष्टि एनआईएससीएआईआर भारत 11(2) : 234–241

चौरसिया ओपी, अहमद जेड, बल्लभ बी (2007)। इदनोवाटनी तथा पराहिमालय के पादप। सेटिस सीरियल पब्लीसिंह हाउस, दिल्ली।

चावला ए, प्रकाश ओ, शर्मा वी आदि (2012)। वैस्क्यूलार पादप, किन्नौर, हिमाचल प्रदेश, भारत चेकलिस्ट 8(3) : 321–348

चेन एस सी, मोरडाक एचवी (2000)। फ्रीटीलेरिया एल इन डब्ल्यू यू जेड वाई, रवीन पी (आदि), चीन की वनस्पतियां खंड 24 विज्ञान प्रेस मिसाउरी बाटनीकल गार्डन, प्रेस बीजिंग सेंट लुईस पीपी 127–133

चौधरी एच जी, बाधवा बी एम (1984)। हिमाचल प्रदेश की वनस्पतियां खंड 1–3 कलकत्ता बाटनीकल सर्वे आफ इन्डिया पे0 186

कन्निघम ए बी, विंक्रमान्न जे ए, पाई एस जे आदि (2018)। उच्च तुंगीय प्रजातियां उच्च लाभ : क्या फ्रीटीलोरिया साइरोमी (लिलीसाई) की वनीय फसल से व्यापार की निरंतर रखा जा सकता है? जार्नल आफ इन्थ्रोफार्मेकोलॉजी 223 : 142–151 https://doi.org/doi.1016/j.jep.2018.05.004

दावा एस, गुरमीत पी डोल्मा टी आदि (2018)। जम्मू–कश्मीर राज्य में औषधीय तथा सुरभित पादपों की स्थिति अन्तर्राष्ट्रीय जार्नल : करंट माइक्रोबायलॉजी नन्दा प्रायोगिक विज्ञान 7(12) : 2597–2615. https://doi.org/10.20546/ijcmas.2018.712.295

दीपा जी वी, जगन्नाथ आर आर, सुरेश एच एस आदि (2018)। ट्रांसडिसीप्लिनरी हेल्थ साईन्स एन्ड टेक्नोलॉजी (टीडीयू) यूनीवर्सिटीन भारत तथा कानून, पर्यावरण विकास और अभिशासन भारत का फोरम

देवी के, समन्त एस एम, पूरी एस आदि (2019)। वैविध्य वितरण पद्धति तथा देशज उपयोग – कनावर वन्यजीव अभ्यारण हिमाचल प्रदेश, उत्तरी हिमालय भारत जार्नल संरक्षण जीव विज्ञान 117 : 172–218

ध्यानी ए, नौटियाल बीपी, नौटियाल एम सी (2010)। गढ़वाल भारतीय हिमालय में औषधियों की परम्परागत पद्धति में अष्टवर्ग पादपों का महत्व, अन्तर्राष्ट्रीय जैवविविधता विज्ञान, पारिपद्धति सेवायें एवं प्रबंधन 6(1–2) : 13–19

दत्ता आई सी (2007)। नेपाल में अकाष्ठीय वन उत्पाद : पहचान, वर्गीकरण, जातीय उपयोग तथा संवर्धन हिल साईड प्रेस, काठमांडु नेपाल।

फेसिओला एस (1990)। कानीकोमिया : भोज्य पादपों की स्रोत पुस्तक कम्पोंग प्रकाशन विष्टा पे0 677

गनी ए एच, टाली बीए, खुरू ए ए आदि (2014)। र्‍यूम स्पेसीफोर्मा रॉयल (पॉली गानो साई) कश्मीरघाटी की वनस्पतियों का नया रिकार्ड, भारत राष्ट्रीय अकादमी विज्ञान लेटर 37 : 561–565 https://doi.org/10.1007/s40009-014-0279-7

घोरवनी ए, एमीरी एम एस, होस्सेनी ए (2019)। र्‍यूम ट्रक्सीस्टेकेरम जेनीसिच हेलियोन 516 के फार्माकोलाजीकल गुण। ईओ 1986 https://doi.org/10.1016/j.heliyon.2019.e01986

गोराया जी एस, जिस्तू वी, रावत जी एस आदि (2013)। हिमाचल प्रदेश के वनीय औषधीय पादप : उनकी संरक्षण स्थिति तथा प्रबंधन प्राथमिकताओं का आकलन (सीएएमसी), हिमाचल प्रदेश, वन विभाग, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत।

गोराया जी एस, वेद डी के (2012)। भारत के औषधीय पादप, उनकी मांग और आपूर्ति का आकलन राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड, आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली तथा भारतीय वन अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद देहरादून। जड़ीय संदर्श : वर्तमान तथा भविष्य सतीश सीरियल पब्लीक्शन हाउस, दिल्ली, भारत पे0 37–46

ग्यूरम एम, जियांग्ज जेड जेड, झांग एल वाई (2012)। पोडोफाईलोटोक्सिन पादप मूल का चिकित्सा एजेंट, भूत, वर्तमान तथा भविष्य। प्राकृतिक औषधियों का चीनी जार्नल 10(3) : 161–169 https://doi.org/10.3724/SP.J.1009.2012.00161

गुप्ता एस के शर्मा ओ पी रैना एनएस आदि (2013)। जम्मू–कश्मीर की पद्दार घाटी भारत औषधीय पादपों का इदनोंवाटनीकल अध्ययन। परम्परागत कम्पलीमेन्टरी तथा वैकल्पिक औषधीय का अफ्रीकी जार्नल 10(4) : 59–63

गुप्ता वी, जॉन डी, राजदान वी के आदि (2012)। भारत में फयूसेरियन सोलनी प्रजाति काम्पलेक्स पर काला जीरा प्रकंद रॉट रोग की पहली रिपोर्ट 96(7) : 1067–1067 https://doi.org/10.1094/PDIS-02-12-0148-PDN

हेनिल्ट पी, बट्टनर आर, मैन्स फील्ड आर किलान आर (2001)। मैन्सफील्ड एनसाइक्लोपेडियम कृषि तथा फलोडयाम फसलें, स्प्रिंगर बर्लिन।

हस्सनजाई अजर, एच टामी, बी अमींजारी एम, डान्सामूज एस (2019)। व्यूनियम पर्सीकम (बोइस) बी फेडिस्का। फाइटोकेमेस्टी, थेराप्यूटिंग उपयोग तथा खाद्य उद्योग में अनुप्रयोग। प्रायोगिक फार्मासेटिकल विज्ञान का जार्नल 8(10) : 150–158

जोशी जी सी, तिवारी, एल एम लोहानी एन आदि (2010)। स्थिति का अध्ययन संकटापन्न औषधीय पादपों पर खतरे – भारत के तुंगीय क्षेत्र। इन (तिवारी आदि) जैवविविधता संभावना, हिमालय ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनीताल पे0 427–436

काला सी पी (2000)। भारतीय पराहिमालय में दुर्लभ और संकटापन्न औषधी पादपों की स्थिति तथा संरक्षण। जीव विज्ञानीय संरक्षण 93(3) : 371–379 https://doi.org/10.1016/S0006-3207(99)00128-7

काला सी पी (2005)। भारतीय हिमालय के रक्षित क्षेत्रों में संकटापन्न औषधीय पादपों का देशज उपयोग, आबादी घनत्व तथा संरक्षण। भारतीय संरक्षण जीवविज्ञान 19(2) 368–378 https://doi.org/10.1016/S0006-3207(99)00128-7

काला सी पी (2007)। भारतीय हिमालय में मानव वनस्पति विज्ञान के स्थानीय संदर्भ : पर्यावरणीय संरक्षण की जटिलतायें। करंट सांईस 93(12) : 1828–1834

काला सी पी, ध्यानी पी पी, सजवाण बी एस (2006)। उत्तरी भाग में औषधीय पादप क्षेत्र का विकास : चुनौतियां तथा सुअवसर। मानव जीव विज्ञान जार्नल एवं मानव औषधियां। 2: 32. https://doi.org/10.1186/1746-4269-2-32

कल्सांग टी (2006)। संकटापन्न औषधीय पादपों का संवर्धन तथा संरक्षण (तिब्बती औषधीय पादप –स्वास्थ्य संबंधी) मेन्तसी खांग, धरमशाला हिमाचल प्रदेश, भारत द्वारा प्रकाशित पेज 350।

कान्त के, वालिया एम, अग्निहोत्री वी आदि (2013)। पाइकोरिजा की पत्तियों के निष्कर्षण के आक्सीरेंटरोधी क्रियाकलापों व मूल्यांकन। भारतीय फार्मेसिटीकल विज्ञान जार्नल। 75:3 24–329 https://doi.org/10.4103/0250-474X.117438

कौल एम के (1997)। कश्मीर और लद्दाख के औषधीय पादप हिमालय के शीतोष्ण तथा ठन्डे शुष्क क्षेत्र। इन्डूज प्रकाशन पे 173

खान एस के, कारनल एन एम, शंकर डी (2003)। स्थानीय स्वास्थ्य परम्पराओं को पुनः शक्ति प्रदान के लिए भारतीय फाउन्डेशन। हर्बल ग्राम 68 : 34–48

खरे सी पी (2004) भारतीय जड़ीय दवाईयां : नियमित पश्चिमी उपचार, आयुर्वेदिक तथा अन्य परम्परागत उपयोग, बॉटनी, हीडलबर्ग, बर्लिन 16

खरे सी पी (2007) भारतीय औषधीय पादप : उद्धरण शब्दकोश। स्प्रिंगर वरलेग, न्यू यार्क, आईएनसी, न्यू योक – 5

नाईट एफ पी (1980) छाया के लिए पादप, रॉयल हार्टीकलचर सोसाइटी, लन्दन। आईएसबीएन 0–900629–78–9

कुमार ए, सत्यकुमार एस, गोराया जी एस (2021) संग्रह उपयोग मांग, बाजार, मूल्य, प्रवृत्तियों तथा जीवन चक्र पर लाहौल और पांगी भू–दृश्य, हिमाचल प्रदेश में सुरभित और औषधीय पादप प्रजातियों का आकलन हिमाचल प्रदेश वन विभाग तथा संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम को सौंपी गई रिपोर्ट। पेज 141

कुमार एन, चोयाल आर (2012) जिला हमीरपुर–हिमाचल प्रदेश में कुछ पादपों पर मानव–वानस्पतिक टिप्पणियां, जिनका उपयोग अर्थीटिस, र्‍यूमेटिज्म तथा जलन करने की गड़बड़ियां को दूर करने में किया जाता है। भारतीय पादप विज्ञान जार्नल। (2 & 3) : 2319–3824

कुमार पी, प्रताप एम, राणा डी आदि (2020) स्टरोडल अल्कालोईडस का वन ऊतकों में मीटावोलाईट तथा एक्सप्रेशन प्रोफाईल एवं जिनकी तुलना फर्टीलोरिया रायली – उच्च मूल्य की इन–बिट्रो संवृद्धि प्रकंदों के आधार पर की जाती है। अत्यन्त संकटापन्न हिमालयी औषधीय जड़ी। औद्योगिक फसलें और उत्पाद 145 : 111945. https://doi.org/10.1016/j.indcrop.2019.111945

कुमार वी, रविन्द्र आर शर्मा एस (2016) एकानीटम हेट्राफाईलम वाल में परागण – अत्यंत संकट में पड़ी हिमालय शीतोष्ण औषधीय पादप प्रजातियां। इन्डियन फॉरेस्टर 142(12) : 1191–1194

कुमार ए, चौधरी ए, कौर एच (2020)। हिमाचल प्रदेश भारत की लाहौल घाटी के वनीय चिकित्सा फलोरा का वैविध्य। वर्तमान माइक्रोबायलॉजी तथा प्रायोगिक विज्ञान पर अन्तर्राष्ट्रीय जार्नल 9(7) : 48–62।

कुंकेल जी (1984) मानवीय खपत के लिए पादप : एन्नोटेड चेकलिस्ट – भोज्य फेनरोगैम तथा फर्न। कोइल्टज वैज्ञानिक पुस्तकें, कोइंग्सटीन, जर्मनी पेज 393।

कुशवाहा आर, चन्दा एस, ओगरा आर के आदि (2020) भण्डारण व्यवहार के आधार पर पोडोफाईन्स हेजांड्रम तथा अकोनीटम हेट्राफाइलम के बीजों का क्रायोप्रिजर्वेशन बीज प्रौद्योगिकी 32(2) : 117–127

लोहानी एल, तिवारी एन, कुमार आर आदि (2013)। कुमांऊ हिमालय में पॉलीगोनेरम, वर्टीसिलेटम (एल) एलोनी का आबादी अध्ययन, वासस्थल आकलन तथा खतरों का श्रेणीकरण पारितंत्रीय तथा प्राकृतिक पर्यावरण का जार्नल 5(5) : 74–82 https://doi.org/10.5897/JENE12.042

लुओ डी, ल्यू वाई, वांग वाई आदि (2018)। फ्रीटीलेरिया साइरोसा प्रकंदों की त्वारित पहचान तथा केमोमेट्रिक पद्धतियों से इसमें मिलावट की पहचान। बायोकेमीकल सेस्टामेटिक तथा इकोलॉजी 76 : 46–51. https://doi.org/10.1016/j.bse.2017.12.007

मथेला एम, कुमार ए, शर्मा एस आदि (2021)। फ्रीटीलेरिया साइरोसा डी डॉन की तीव्र मांग : पश्चिमी हिमालय का संकटापन्न औषधीय पादप। निरंतरता की खोज 2 : 38 https://doi.org/10.1007/s43621-021-00048-5

मेन्डीगरी ए, आरवनोजारी एम, रामिया (एच), शरीफार एफ (2012)। ब्यूनियम पर्सीकम (बोइस) बी फेडिज के सुरभित तेल तथा मिथानोलिक निष्कर्षण की कन्वलसेंट क्रियाकलाप। इदनोफामाकोलॉजी का जार्नल 140(2) : 447–451. https://doi.org/10.1016/j.jep2012.01.024

मसूद एम, अरशद एम, कुरेशी आर आदि (2015) पाइकोरिजा कुरूवा : इदनोंफामेकालॉजीकली की महत्वपूर्ण पादप प्रजाति जो हिमालयी क्षेत्र में पाई जाती है, शुद्ध प्रायोगिक जीव विज्ञान 4(3) : 407–417 https://doi.org/10.19045/bspab.2015.43017

मथेला एम, बरगली एच, शर्मा एम आदि (2020) पश्चिमी हिमालय, भारत के अत्यन्त संकटापन्न औषधीय पादपों का झकझोर देने वाला भविष्य। करंट सांईस 118 (10) : 1885–1865

मैथ्यू बी (1996) *फ्रीटीलेरिजा काइट्रेलेन्सिस* / बाटनीकल मैग्जीन। 13 : 27–32

मिराज एस, कियानी एस (2016)। करूम कर्वी के फार्माकोलॉजीकल क्रिया कलाप। एल डेर लेटर 8(6) : 135–138

नैथानी बी डी (1984)। चमोली का फलोरा बाटनीकल सर्वेआफ इण्डिया – फलोरा आफ इण्डिया सीरीज 3, हावड़ा भारत सरकार पे 654

नौटियाल बीपी, प्रकाश वी, बहुगुणा आर आदि (2003)। गढ़वाल हिमालय मे तीन एकोनाईट प्रजातियों अप्राप्यता की स्थिति का मॉनीटरिंग तथा आबादी अध्ययन। उष्णकटिबंधीय पारिपद्धति 43(2) : 297–303

नौटियाल एस सी, नौटियाल पी पी (2004)। उच्चतुंगीय औषधी तथा सुरभित पादपों की कृषि तकनीकें। उच्च तुंगता पादप शरीरक्रिया विज्ञान। अनुसंधान केंद्र, देहरादून भारत पे0 202

नोटियाल एम सी, रावत ए एस, भदूला एस के आदि (1987)। पोडोफाइलम हेक्जाड्रम में बीज अंकुरण बीज अनुसंधान 15 : 206–209

एन एम पी बी (2008)। चयनित औषधीय पादपों की कृषि तकनीकें। राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड, आयुष विभाग, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली पे0 240

एन एम पी बी (2016)। चयनित औषधीय पादपों की कृषि तकनीकें। राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड, आयुष विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली पे 74

पाण्डे एच, नन्दी एसे के, कुमार ए आदि (2007)। पोडोफाईलम टाक्सेन की मात्रा : पोडोफाइलम हेक्जान्ड्रम में। जिनके बीज मूल की अवधि का पता है और जो निम्न तुंगता में पाये जाते हैं। एक्श फीजियोलॉजी प्लेन्टेरम 29(2) : 21–126 https://doi.org/10.1007/s11738-006-0015-0

पाण्डे एस, कुशवाहा आर, प्रकाश ओ आदि (2005)। एकोनीटम हेक्जांड्रम का परास्थानिक संरक्षण – हिमालय की संकटापन्न औषधीय पादप का वृहत प्रसार तथा उसकी वृद्धि और अल्कानोईड मात्रा पर प्रभाव। पादप आनुवंशीय संसाधन 3 : 127–135

पंडित ए एस, दार ए आर, लाइटू एस आदि (2018)। र्‍यूम आस्ट्रेली हिमालय की उच्च मूल्य की संकटापन्न जड़ी प्रजाति : इसके वनस्पतिशास्त्र मानव औषधीय उपयोग समीक्षा 17(3) : 573–609 https://doi.org/10.1007/s11101-018-9551-7

पन्त एस, रिंचन टी (2013)। डेक्टाइलोरिजा हेटेन्जीरिया : उच्च मूल्य का आर्किड। चिकित्सीय पादप अनुसंधान 6(15) : 3522–3524 https://doi.org/10.5897/JMPR12.097

पंवार के एस (2000)। ब्लैक कारावे – काला जीरा इन आर्या पी एस भारत की मसाला फस्लें। कल्याणी प्रकाशक, नई दिल्ली पे0 172–178

परामाननिक डी, पाण्डे आर, शुक्ला एस एस आदि (2012)। औषधीय पादप अकेनीटम हेट्रोफाईलम (अरूना) पर महत्वपूर्ण निष्कर्ष। फार्माकोपंचर 20(2) : 89–92 https://doi.org/10.3831/KPI.2017.20.011

फिलिप आर, फोय एन (1990)। जड़ियां पैन बुक लिमिटेड लन्दन, यू के आईएसबीईएन–330–30725–8

प्रकाश के, निर्मला ए (2013) भारत में संकटापन्न प्रजातियों की समीक्षा, इदनोमेडीसिन तथा फार्माकोलॉजीकल अनुसंधान के संरक्षण की समीक्षा। 1(1) : 21–33

प्रसाद डी एन (2016)। मध्य नेपाल में उच्च तुंगीय औषधियों तथा सुरभित पादपों की घेरलूकरण/संवर्धन क्षमता। झाड़खंड जार्नल आफ डेवलपमेंट एण्ड मैनेजमेन्ट स्टडीज, रांची 14(1) 6885–6901

काजी पी, राशिद ए, शवला एसए (2011)। पोडोफाइलम हेक्जांड्रम वैश्विक औषधीय पादप। अन्तर्राष्ट्रीय फार्मेसी जार्नल तथा फार्मेसिटिकल विज्ञान 3 : 261–268

राय एल के, प्रसाद पी, शर्मा ई (2000)। सिक्किम हिमालय कुछ महत्वपूर्ण औषधियों के संरक्षण की समस्यायें। जीव विज्ञानीय संरक्षण 93(1) : 27–33 https://doi.org/10.1016/S0006-3207(99)00116-0

राजेश एम, शिवांघन जी, जियाराज एम आदि (2014)। सोमेटिक इब्रोजेन्सिस तथा पोडो फाइलोटॉक्सीन उत्पादन के लिए हेक्जाड्रम रायल में सक्षम स्वस्थ्यानिक पद्धति। प्रोटोप्लाज्मा 251(5) : 1231–1243 https://doi.org/10.1007/s00709-014-0632.1

राणा पी के, कुमार पी, सिंघल वी के आदि (2014)। शीत रेगिस्तान हिमालय भारत में चम्बार जिले की पांगी घाटी के जनजातीय समुदायों द्वारा स्थानीय पादप जैवविविधता का उपयोग। वैज्ञानिक विश्व जार्नल 1–15 https://doi.org/10.1155/2014/753289

राणा एस के, रावत जी एस (2017)। एक शताब्दी के दौरान हिमालयी पादप आधारित प्रकाशित डाटाबेस 2(36) : 1–9 https://doi.org/10.3390/data2040036

राशिद एस, कप्लू जेड ए, सिंह एस आदि (2014) र्‍यूम वेब्बेनियम रॉयल के कैलम इन्डक्शन तथा प्रकंदों से पादप पुनरूत्पति – कश्मीर हिमालय में पाई जाने वाले संकटापन्न औषधीय पादप। वैज्ञानिक तथा इन्नोवेटिव अनुसंधान जार्नल 3 (5) : 515–518

रवि कुमार के, नूरनिशा बेगम, वेद बी डी के आदि (2018)। भारतीय वाणिज्यिक औषधीय पादपों का कम्पोडियम। स्थानीय स्वास्थ्य परम्पराओं को पुनर्वलित करने का फाउन्डेशन, बंगलोर https://doi.org/10.22244/rheedea.2019.29.2.07

रावत जी एस (2007)। पश्चिमी हिमालय की तुंगीय वनस्पति सामुदायिक संरचना और प्रजाति वैविध्य। संरक्षण के आयाम तथा पहलू। डीएससी शोधलेख, कुमांऊ विश्वविद्यालय नैनीताल पी 239

रावत बी, रावत जी एस, मिश्रा एस आदि (2013) पाइकोरिजा कुरूआ : वर्तमान स्थिति तथा ऊतक व्यवहार, मिडिपेटेड बायोटेक्नालोजीकल उपाय। एक्टा फीजियोलॉजी प्लेन्टारम 35(1) : 1–12 https://doi.org/10.1007/s11738-012-1069-9

रावत जी एस, अधिकारी बी एस, तिवारी यू के आदि (2016)। गढ़वाल क्षेत्र उत्तराखंड के औषधीय पादप। वितरण पर आधार रेखा। भारतीय वन्यजीव संस्थान तथा उत्तराखंड वन विकास कार्पोरेशन, देहरादून भारत

रोकाया एम बी, मुन्नीवर गोवा जेड, टिम्सीना बी आदि (2012)। र्यूम आस्ट्रेले डी डॉन : वनस्पति की समीक्षा, इदनोफार्मालॉजी जार्नल। 141(3) : 761–774 https://doi.org/10.1016/ j.jep.2012.03.048

सलेही पी, मोहम्मदी एफ, अस्गारी बी (2008)। हाइड्रोडिस्टीलेशन हेडस्पेस साल्वेट माइक्रोएक्स्ट्रैक्शन से ब्यूनियम पर्सीकम के सुरभित तेलबीज का विश्लेषण। प्राकृतिक कम्पाउन्ड का रसायन शास्त्र 44(1) : 111–113 https://doi.org/10.1007/s10600-008-0033-9

समन्त एस एस, बुटोला जेएस, लाल एम (2008)। भारतीय हिमालयी क्षेत्र में वाणिज्यिक दृष्टि से सक्षम औषधीय पादपों की कृषि तकनीकें। जैवविविधता संरक्षण एवं प्रबंधन, थीम जीबीपी आईएचईडी, हिमाचल प्रदेश, मोहाल–कुल्लू हिमाचल प्रदेश, भारत

समन्त एस एस, धर यू, रावत पी एस (2001)। पश्चिमी हिमालय के अस्कोट वन्यजीव अभ्यारण में संकटापन्न औषधीय पादपों का वैविध्य वितरण तथा देशज उपयोग : संरक्षण तथा प्रबंधन संदर्श। समन्त एस एस आदि हिमालयी औषधीय पादप : संभावना एवं क्षमतायें। ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनीताल पे 167–184

समन्त एस एस, पन्त एस, सिंह एम आदि (2007)। हिमाचल प्रदेश में औषधीय पादप, उत्तर पश्चिमी हिमालय, भारत। जैवविविधता विज्ञान एवं प्रबंधन पर अन्तर्राष्ट्रीय जार्नल 3 : 234–251. https://doi.org/10.1080/174515907618177

सेकर के सी, श्रीवास्तव एस के (2005)। पिनघाटी राष्ट्रीय पार्क की वनस्पति हिमाचल प्रदेश, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय पे 296

सेल्वम ए बी डी (2015)। इन्डियन एकोनाईट्स : बून और बेन। फार्माकाग्नेसी तथा प्राकृतिक उत्पाद जार्नल। 1 : 104. https://doi.org/10.4172/2472-0992.1000104

शाफी एच, नाउचू ए, शाह एस ए आदि (2018)। फ्रीटीलेरिया डी डॉन, (लिल्लीसाई) : के लिए परास्थानिक संरक्षण रणनीतियां : कश्मीर हिमालय की अत्यन्त संकटापन्न औषधीय जड़ी। भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के कार्यवृत्त भारतीय सेक्शन बी, जीवविज्ञान साईन्स 88(1) : 33–41. https://doi.org/10.1007/s40011-016-0726-y

शरीफीफर एफ, यास्सा एन, मोजाफेरियन बी (2010)। ब्यूनियम पर्सीकम (बोइसिस) फेडिन्त के बीजों से जैवसक्रिय मुख्य घटक। फार्मेसीटीकल विज्ञानों का पाकिस्तानी जार्नल 23(3) : 300–304

शर्मा ए, शर्मा पी (2018)। हिमालयी मई एप्पल (पोडोफाइलम हेक्जांड्रम) : एक समीक्षा। उच्च आधारिक विज्ञान का एशियाई जार्नल 6(2) : 42–51

शर्मा डी, ठाकुर के एस पी (2013)। परम्परागत फसलें फसलोपरान्त पद्धतियां तथा प्रबंधन रणनीतियां – धूप, कारू अतीष/पतीष तथा तेजपत्ता – हिमाचल प्रदेश। बहुविद्याक्षेत्र के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अकादमिक अनुसंधान जार्नल 1(8) : 142–152

शर्मा पी के, ठाकुर एस के, मनुजा एस आदि (2011)। लौहाल घाटी के निवसियों का आमची दवा पद्धति के जरिये परम्परागत फाइलोथेरेपी इलाज का अवलोकन – हिमाचल प्रदेश के उत्तर पश्चिमी हिमालय का शीत रेगिस्तानी क्षेत्र, भारत। चीनी दवाईयां 2 : 93–102 https://doi.org/10.10.4236/cm.2011.23016

सिंह ए, लाल एन, समंत एस एस (2009)। लाहौल घाटी प्रस्तावित शीत रेगिस्तान जैवमण्डल रिजर्व, भारत में औषधीय पादपों का देशज उपयोग एवं संरक्षण प्राथमिकीकरण। जैवविविधता विज्ञान तथा प्रबंधन का अन्तर्राष्ट्रीय जार्नल 5(3) : 132–154 https://doi.org/10.1080/17451590903230249

सिंह एच बी, सुन्द्रियाल आर सी (2005)। खांग चोंग डेंग जैवमण्डल रिजर्व, सिक्किम हिमालय भारत में तुंगीय वनस्पतियों का संघटन, आर्थिक उपयोग तथा पोषक मात्रा। आर्कटिक अन्टार्टिका तथा अल्पाईन अनुसंधान 37(4) : 591–601 https://doi.org/10.1657/1523-0430

सिंह जे (2017)। अतिवीसा (अकोनीटम हेट्रोफाइलम) लाभ, उपयोग मात्रा तथा प्रभाव। www.ayurtimes.com/ativisha-aconitum-heterophyllum/

सिंह के , कुमार पी, कुमार बी आदि (2020)। मोर्फो–एनीटोमीकल एन्ड पालीनोलॉजीकल मानकीकरण एवं डी एन बारकोडिंग फ्रीटीलेरिया साइरोस डी डॉन (पर्याप्त फ्रीटीलेरिया रायल हूक) पादप आर्किव 20(2) : 1304–1313

सिंह के एन, गोपी चंद, कुमार ए आदि (2008) रोहतांग दर्रे के विभिन्न पश्चिमी हिमालय। पर्वतीय विज्ञान जार्नल 5 : 73–83 https://doi.org/10.1007/s11629-008-0073-4

सिंह पी डाश एस एस, सिन्हा बी के (2019)। भारतीय हिमालयी क्षेत्र के पादप (एन्नोटेड चेकलिस्ट तथा फिक्टोरियल गाईड) बाटनीकल भारतीय सर्वेक्षण, कोलकत्ता

सिंह एस के , रावत जी एस (1999)। पुष्पीय वैविध्य तथा वनस्पति संरचना – ग्रेट हिमालयी राष्ट्रीय पार्क पश्चिमी हिमालय पेज 1–125

सोफी पी ए, जीरक एन ए, सिंह पी (2009)। काला जीरा (ब्यूनियम पर्सीकम बायोस) उच्च मूल्य की कश्मीरी फसल तुर्की जीवविज्ञानीय जार्नल 33(3) : 249–258 https://doi.org/10.3096/biy.0803-18

श्रीनीवसुलू वाई, चन्दा एस के, अहुजा पी (2009)। पॉलीफाईलम हेक्जाड्रम रायल में इन्डोस्पर्म डिलेज सीड जर्मिनेशन – महत्वपूर्ण औषधीय जड़ी। बीज विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी 37 : 10–16 https://doi.org/10.15258/sst.2009.37.1.02

श्रीवास्तव एस के (2010)। पश्चिमी हिमालय भारत में पुष्पन वैविध्य तथा संरक्षण रणनीतियां बाटानिका ओरिएन्टेलिस : पादप विज्ञान जार्नल 7 : 18–25 https://doi.org/10.3126/botor.v7i0.4369

सुल्तान आर, वानी एम ए, नाचूल ए (2013)। हिमालय में औषधीय पादपों का अप्रत्याशित ह्रास : गंभीर सामाजिक आर्थिक समस्या। जो बचा हुआ है उसे सहेजने की आवश्यकता। औषधीय पादपों का उच्च वैश्विक अनुसंधान जार्नल 2(1) : 012–0217

सुयाल आर, रावत एस, रावत आर एस, आदि (2020)। पालीगोनेटम वर्टीक्यूलेटम की रूप विज्ञान फाइटोकेमेस्ट्री तथा एन्टीआक्सीडेन्ट्स का वैविध्य। पश्चिमी हिमालय भारत में विभिन्न तुंगताओं तथा वासस्थल स्थितियों में सभी आबादियों पर अध्ययन। पर्यावरण मॉनीटरिंग आकलन 27 : 191 (प्रजाति 3) : 783 https://doi.org/10.1007/s10661-019-7687-6

तबीन एस, कामिली ए एन, गुप्ता आर सी (2016)। पौधशाला स्थितियों में संकटापन्न र्‍यूम प्रजाति के पुनर्स्थापन के लिए आकृति विज्ञानीय अध्ययन तथा परास्थानिक विकास प्रोटोकोल। करंट बाटनी 7 : 30–45 https://doi.org/10.19071/cb.2016.v7.3045

तयादे ए, धर पी, बल्लभ बी आदि (2012)। र्‍यूम वेब्बेनियम रायल। पराहिमालयी लद्दाख के शीत रेगिस्तान में क्षमतावान औषधीय पादप। पादप आर्किक 12(2)603–606

उनियाल ए, उनियाल एस के, रावत जी एस (2011)। पश्चिमी हिमालय में पाइकोरिजा कुरूआ रायल एक्स बेंथ का वाणिाज्यिक निष्कर्षण। पर्वतीय अनुसंधान एवं विकास 31(3) : 201–208

उनियाल एस के, अवस्थी ए, रावत जी एस (2002)। ऊपरी गोरी घाटी, कुमांऊ हिमालय उत्तरांचल में वाणिज्यिक के रूप से दोहन की जाने वाले औषधीय तथा सुरभित पादपों की वर्तमान स्थिति तथा वितरण। करंट सांईस 82(10) : 1246–1252

उनियाल एस के, सिंह के एन, जामवाल पी आदि (वी) छोटा भांगल पश्चिमी हिमालय में जनजातीय समुदायों द्वारा औषधीय पादपों का पारंपरिक उपयोग। इदनोवायलॉजी तथा इदनोमिडीसिन जार्नल 2 : 14 https://doi.org/10.1186/1746-4269-2-14

वसीलिवा एम जी, क्जिुकौ डे वी, प्राइमीनोव एम जी (1985)। कार्योटॉक्सीनोमिक विश्लेषण – जीनस ब्यूनियम (अम्बेलीफेरी) प्लांट सेस्टामेटिक्स एण्ड इवोल्यूशन 149 : 71–88 https://doi.org/10.1007/BF00984155

वेद डी के, गोराया जी एस (2008)। औषधीय पादपों की मांग और आपूर्ति मेडप्लान्ट–इन्विस न्यूजलेटर आफ मेडिस्नल प्लान्ट 1(1) : 2–4

वेद डी, साहा डी, रविकुमार के, हरिदासन के (2015) एकोनीटम हेट्रोफाईलम। संकटापन्न प्रजातियों की आईयूसीएन लालसूची। http://www.iucnredlist/org/species/50126560/50131265

वेद डी के, जी ए रविकुमार के, आदि (2003)। हिमाचल प्रदेश जम्मू कश्मीर तथा उत्तराखंड के औषधीय पादपों का संरक्षण आकलन तथा प्रबंधन प्राथमिकताकरण। कार्यशाला में फाउन्डेशन फॉर रिविटलाईजेशन आफ लोकल हेल्थ ट्रेडीशन्स, बंगलोर, भारत।

वेद डी के, टंडन बी (1998)। जम्मू–कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश के तुंगीय औषधीय पादपों का संरक्षण आकलन तथा प्रबंधन प्राथमिकतायें। फाउन्डेशन फॉर रिविटलाईजेशन आफ लोकल हेल्थ ट्रेडीशन्स, बंगलोर, भारत पेज 75

वर्मा आर के, कपूर के एस (2010)। जिला किन्नौर, हिमाचल प्रदेश में पूह घाटी के शीत रेगिस्तान में पुष्पीय वैविध्य का आकलन। हिमाचल प्रदेश, जीवविज्ञानीय फोरम 2(1) : 35–44

वर्मा आर के, कपूर के एस (2014)। जिला किन्नौर, हिमाचल प्रदेश के रकचाम–चिटकुल वन्यजीव अभ्यारण के तुंगीय क्षेत्रों में पादप वैविध्य की स्थिति। जीवविज्ञानीय फोरम 6(1) : 5–12

वर्मा आर के, तिवारी वी पी (2016)। जिला किन्नौर हिमाचल प्रदेश राज्य भारत के शीत रेगिस्तानी क्षेत्रों में कुछ महत्वपूर्ण औषधीय पादप। उनका उपयोग तथा रासायनिक घटक। जार्नल आफ प्लान्ट केमेस्ट्री एण्ड इकोफीजियोलॉजी 1(2) : 1009

बांग डी, बांग एस, डु क्यू आदि (2014)। संर्वधित फ्रीटीलेरिया साइरोसा के कंदों से स्टरोइडल एल्कालोईड्स का समृद्धीकरण और निष्कर्षण हेतु अनुकूलन विधियां। बायोमेड रिसर्च इन्टरनेश्नल https://doi.org/10.1155/2014/258402

बारघाट ए आर (2015)। भारत के पराहिमालयी लद्दाख क्षेत्र में डक्टीलोरिजा हेटेजीरिया (डी डॉन) सू की जैवविविधता तथा संरक्षण पीएचडी शोध पत्र, जयपी विश्वविद्यालय,सूचना प्रौद्योगिकी, सोलन, हिमाचल प्रदेश।

बारघाट ए आर, बाजपेई पी के, मर्कटी ए ए आदि (2012)। भारत के लद्दाख क्षेत्र में शीत रेगिस्तान में डक्टाइलोरिजा हेटेजीरिया (आर्कीडासाई) की आनुवंशीय विविधता तथा आबादी संरचना। जार्नल आफ मेडिकल प्लान्ट रिसर्च 6(12) : 2388–2395 https://doi.org/10.5897/JMPR11.1007

जरगार बी ए, मसूद एम एच, अहमद बी आदि (2011)। फाइटोकंस्टीट्यूएन्ट्स एण्ड थेराप्यूटिक यूजेज आफ र्यूम केमेस्ट्री 128(3) 585–589 https://doi.org/10.1016/j.foodchem.2011.03.083

झांग डी क्यू, एल एम, यांग वाई पी (2020)। दक्षिण–पश्चिमी चीन में फ्रीटीलोरिया साइरोसा (लिलीसाई) का आनुवंशीय वैविध्य तथा परम्परागत चीनी औषधीय पादपों की संरचना। बायोकेमीकल सेस्टामेटिक्स तथा इकोलॉजी 38ः 236–242

gef

UNDP

भारतीय वन्यजीव संस्थान
Wildlife Institute of India

Himachal Pradesh
Forest Department